ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 30 अगस्त 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 30 अगस्त 2015 से 05 सितंबर 2015

पूर्णिमा ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 35, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. कॉलेज अमृतसर का नया सत्र यज्ञ से हुआ आरम्भ

डी.ए.वी. कॉलेज, अमृतसर का नव शिक्षण सत्र के आरम्भ होने के अवसर पर कॉलेज परिसर में एक बृहद्यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें मुख्यातिथि के रूप में श्री बक्सी राम अरोड़ा, मेयर नगर निगम, अमृतसर एवं श्री जे.पी. शूर निदेशक (स्कूलस) डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धर्त्री समिति नई दिल्ली पधारे। कॉलेज प्राचार्य डॉ. राजेश कुमार ने मुख्यातिथियों का श्रद्धा पूर्वक अभिनन्दन किया और यजमान के आसन पर विराजमान किया। संस्कृत विभागाध्यक्ष आचार्य डॉ. कुलदीप आर्य ने वैदिक रीति से बृहद्यज्ञ कराया जिसमें प्राचार्य डॉ. राजेश कुमार जी एवं समस्त कॉलेज के प्राध्यापकों, अधिकारियों तथा छात्र–छात्राओं ने अत्यन्त श्रद्धा भाव से आहुतियाँ प्रदान की तथा शुभ संकल्प धारण किए।

यज्ञोपरान्त प्राचार्य डॉ. राजेश कुमार जी ने यज्ञ के महत्त्व पर सारगर्भित व्याख्यान देते हुए कहा कि आज यज्ञ के अर्थों से देव पूजा, संगतिकरण और दान को जीवन में धारण करने की आवश्यकता है। वर्तमान समय की मानसिक अवसाद, पर्यावरण प्रदूषण आदि अनेक समस्याएँ यज्ञ से समाप्त हो जाती हैं। मुख्यातिथि मेयर श्री बख्शी राम अरोड़ा जी ने कहा कि डी.ए.वी. कॉलेज विश्व की श्रेष्ठतम् शिक्षण संस्थाओं में से एक है, मुझे इस कॉलेज में पढ़ने का सौभाग्य मिला। डी.ए.वी. जैसे संस्कार और कार्य गुणवत्ता दूसरे संस्थानों में कहीं नहीं, इन संस्थाओं का योगदान हर क्षेत्र में अद्वितीय है। यहाँ के कर्मठ प्रोफेसर एवं कर्मचारी वर्ग रात दिन विद्यार्थियों के भविष्य निर्माण में लगे रहते हैं। श्री जे.पी. शूर जी ने डी.ए.वी. कॉलेज की उपलब्धियों को सराहा और समाज को जागृत करने वाली महर्षि दयानन्द की शिक्षा नीति की व्याख्या की। महर्षि की शिक्षानीति पर आज प्रत्येक समाज वर्ग और देश को चलना आवश्यक है।

इस अवसर पर श्री जे.के. लूथरा, श्री सुदर्शन कपूर, प्रिं. अजंना गुप्ता, प्रिं. अजय बेरी तथा कॉलेज के समस्त अधिकारी, प्राध्यापक गण व कर्मचारी वर्ग उपस्थित थे। शान्ति पाठ के बाद कॉलेज में कक्षाएं लगनी प्रारम्भ हुईं।

हजारी बाग में प्रतिभा सम्मान समारोह से श्री नारायण दास ग्रोवर को याद किया गया

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल कनहरी हिल दयानंद मार्ग हजारीबाग परिसर में एन.डी. ग्रोवर स्मृति प्रतिभा सम्मान समारोह आयोजित किया गया। इस अवसर पर बतौर मुख्य अतिथि उपायुक्त मुकेश कुमार ने कहा कि साहस और लगातार प्रयास सफलता का मूल मंत्र है। छात्र अपने लक्ष्य का निर्धारण करें और पूरे लगन और उत्साह के साथ समय निर्धारित करते हुए लक्ष्य की प्राप्ति करें। वे फेसबुक और ट्विटर से खुद को दूर रखें। शिक्षण संस्थान मानवीय मूल्यों पर आधारित चरित्र निर्माण वाली शिक्षा दें। छात्र पैकेज को महत्व न देकर मानव सेवा को ही जीवन का लक्ष्य बनाएं। बतौर विशिष्ट अतिथि आरक्षी अधीक्षक अखिलेश झा ने कहा कि भौतिक सफलता से परे छात्र सामाजिक सेवा व्रत लेकर अपने जीवन में आगे बढ़ें। सच्चाई, ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा जैसे गुणों के साथ आगे बढ़ने वाले छात्र ही देश की उन्नति में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। इस अवसर पर सम्मानित अतिथि के रूप में पूर्व आईजी दीपक वर्मा, सिविलसर्जन डॉ धर्मवीर, बैक ऑफ इण्डिया के जोनल मैनेजर अमित राय, पूर्व सांसद महावीर लाल विश्वकर्मा, एनटीपीसी के जीएम आर के सिंह सहित अन्य अतिथियों ने भी दसवीं, बारहवीं एवं अन्य प्रवेश परीक्षाओं में उम्दा प्रदर्शन करने वाले छात्र छात्राओं को सम्मानित किया।

प्राचार्य अशोक कुमार ने अभिभावकों के प्रति आभार प्रकट किया जिनके सहयोग से विद्यालय का रिजल्ट पूरे जिले में टॉप रहा। हिंदी शिक्षक डॉ. बलदेव पाण्डेय ने महात्मा नारायणदास ग्रोवर के त्याग, निष्ठा, कर्तव्य एवं ईमानदारी को आत्मसात् करने की बात कही। कार्यक्रम को सफल बनाने में शिक्षक तरुण जैन, जैन, धीरज गुप्ता, केके सिंह एवं नित्यानंद पाण्डेय ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। धन्यवाद ज्ञापन एलएमसी के वाइस चेयरमैन रंजन जैन ने किया। कार्यक्रम का समापन शांतिपाठ के साथ हुआ।

मधु स्मृति संस्थान कोटा में जिला आर्य प्रतिनिधि सभा का कार्यक्रम

श्रेष्ठ मनुष्य बन करें समाज के विकास में योगदान। आज हर जगह डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक बनने की होड़ है। किंतु साथ में मनुष्य को संस्कारवान बनाना भी बेहद जरूरी है।'' उक्त विचार अमरोहा उत्तर प्रदेश से पधारे विद्वान डॉ. अशोक आर्य ने मधु स्मृति संस्थान कोटा में व्यक्त किए। कार्यक्रम का प्रारंभ ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना के मंत्रों सहित स्वस्ति वाचन के साथ हुआ

डॉ. आर्य ने कहा ''राष्ट्र का निर्माण चरित्रवान लोगों से होता है। जीवन को अच्छा बनाना है तो इसके लिए निरंतर परिश्रम करें। महापुरुषों के बताये मार्ग का अनुसरण करें। सत्य का अनुसरण करें। जो सत्य के मार्ग पर चलता है वो निडर बनता है।

उत्तर प्रदेश अमरोहा से पधारी विदुषी डॉ. वीना रस्तोगी ने कहा कि जीवन में अनुशासन का बहुत महत्व है। ईश्वर भी उनके ही साथ होता है जो परिश्रम करते हैं। छात्र जीवन में विद्यार्थियों के जो पांच लक्षण बताये गए हैं उनका अवश्य पालन करना चाहिए। कोटा के वैदिक विद्वान आचार्य अग्निमित्र शास्त्री ने जीवन में सफलता के लिए एक श्रेष्ठ लक्ष्य निर्धारित करने और उसे पाने के लिए अनवरत प्रयास करने की बात कही।

कार्यक्रम में आर्य समाज कोटा के जिला प्रधान अर्जुनदेव चड्ढा ने अपने उद्बोधन में कहा कि जरूरतमंद की सेवा ही सच्ची सेवा है। संस्थान की काउंसलर डॉ. अंजली निर्भीक ने बालकों द्वारा की जाने वाली ध्यान और योग क्रियाओं संबंधी जानकारी दी। संस्थान की निदेशिका श्रीमती बृजबाला निर्भीक ने आगंतुक अतिथियों, विद्वानों का आभार व्यक्त किया और शांतिपाठ के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 30 अगस्त, 2015 से 05 सितंबर, 2015

हमें क्षमा करो

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

इमामग्ने शरणिं मीमृषों नः, इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृ मर्त्यानाम्।।

ऋग् 1.31.13

ऋषिः **हिरण्यस्तूपः आङ्गिरसः।** देवता **अग्निः।** छन्दः **त्रिष्टुप्।**

● (**अग्ने**) हे अग्रणी तेजस्वी परमात्मन्! (**नः**) हमारी (**इमां**) इस् (**शरणि**) [व्रतलोप रूप] हिंसा को (**मीमृषः**) क्षमा करो। (**इमं**) इस (**अध्वानं**) [भ्रांत] मार्ग के अवलम्बन को भी [क्षमा करो] (**यं**) जिस पर [हम] (**दूरात्**) दूर तक (**अगाम**) चल चुके हैं। [तुम] (**सोम्यानां**) सौम्य जनों के (**आपिः**) बन्धु, (**पिता**) पिता [और] (**प्रमातिः**) शुभचिन्तक [हो], (**मर्त्यानां**) मर्त्यों को (**भूमिः**) घुमानेवाले [और] (**ऋषिकृत्**) ऋषि बना देनेवाले (**असि**) हो।

अपने जीवन में हम अन्य हिंसाएँ करते हों या न करते हों, पर व्रत–लोपरूप आत्महिंसा तो निरन्तर करते रहते हैं। कभी हम सत्य–भाषण का व्रत लेते हैं, कभी नित्य सन्ध्या–वन्दन और अग्निहोत्र करने का व्रत लेते हैं, कभी नियमित व्यायामा और प्रातः भ्रमण का व्रत लेते हैं, कभी ब्रह्मचर्य–पालन का व्रत लेते हैं, कभी वेद के स्वाध्याय और प्रातः भ्रमण का व्रत लेते हैं, कभी ब्रह्मचर्य–पालन का व्रत लेते हैं, कभी वेद के स्वाध्याय का व्रत लेते है; पर शीघ्र ही इन ब्रतों को तोड़ भी देते हैं। हे परमात्मन्! तुम अग्नि हो, अग्रणी होकर सबका मार्ग–दर्शन करने वाले हो। हमारा भी मार्ग–दर्शन करो। तुम व्रत पति हो, हमें भी व्रतों पर दृढ़ रहने की शक्ति प्रदान करो। जो व्रत–भंगरूप हिंसा हम अब तक करते रहे हैं, उसके लिए हमें क्षमा करो।

व्रत–लोप के अतिरिक्त दूसरा अपराध हमने यह किया है कि हम अब तक भ्रांत राह पर चलते रहे, और उस भटकी राह पर चलते–चलते बहुत दूर निकल आये। अब यह देखकर हमारा सिर चकरा रहा है कि जितना गलत रास्ता हम पार कर चुके हैं, उससे वापिस लौटने के लिए हमें अनवरत कितना महान् प्रयास करना पड़ेगा। हे प्रकाशमय अग्निदेव! तुम्हीं प्रकाश देकर हमें उस कुमार्ग से वापिस लौटाओ। तुमसे दूर होकर जो हम भ्रांत पथ पर चल पड़े, उसके लिए भी तुम हमें क्षमा करो।

तुमसे क्षमा–याजना हम कारण नहीं कर रहे कि हम दंड से बचना चाहते हैं। हम जानते हैं कि दुष्कर्मों का दण्ड न देना रूप क्षमा तुम कभी नहीं करते हो। अतः तुम्हारे दण्ड का हम स्वागत करते हैं। व्रत–लोप और उन्मार्गगामिता का दुष्परिणाम हम पर्याप्त भोग चुके हैं और अब भी यदि कुछ भोग शेष है तो उसके लिए भी हम तैयार हैं। पर क्षमा–याजना हम भविष्य में उक्त अपराधों से बचने के लिए कर रहें हैं। क्षमा नही माँगता है जो अपने अपराध को स्वीकार करता है और उस अपराध से भविष्य में बचे रहने की जिसके मन में उत्कट चाह होती है। उसी मनोवृत्ति के के साथ हम तुम्हारे सम्मुख उपस्थिति होकर क्षमाप्रार्थी हो रहे हैं।

हे प्रभु! तुम सौम्यजनों के बन्धु, पिता और हितचिन्तक हो। तुम्हारी कृपा से हम भी सौम्य बन जाएँ। तुम 'भूमि' और 'ऋषिकृत्' हो। जैसे कुम्भकार मिट्टी को चाक पर घुमाकर उत्तमोत्तम पात्रों के रूप में परिणत कर देता है, वैसे ही तुम अपने दिव्य चक्र पर घुमाकर सामान्य मर्त्य को भी ऋषि बना देते हैं। हे देव! तुम हम पर भी अपनी कृपा बरसाओ, हम मर्त्यों को भी ऋषि बना दो।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान्

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी प्रत्येक व्यक्ति सुख की खोज में संलग्न है। सुख तीन प्रकार के हैं– शारीरिक सुख, मानसिक शान्ति और आत्मिक आनन्द। इन असंख्य आविष्कारों में जो विज्ञान के क्षेत्र में हुए है आत्मिक आनन्द मिलने का उत्पन्न नहीं होता। सुख शान्ति और आनन्द केवल उस समय मिलते हैं, जब आत्मा और ईश्वर का मिलन होता है।

इस संसार में एक ओर प्रकृति है दूसरी और ईश्वर। दोनों के मध्य में आत्मा खड़ा है। दोनों में से किसको वह चुनेगा है यह निर्णय उसे करना है। यदि प्रकृति को वरना है तो उसे दे दो अपना वोट। हमारे शास्त्र उसे प्रेय मार्ग कहते हैं। इससे उलट वह श्रेय जिसमें आत्मा ईश्वर को चुनता है और उसे अपना वोट देकर वर लेता है। प्रकृति मनमोहिनी है, मोहित कर देती है मनुष्य को। परन्तु विनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं होती। इस बात को पुष्ट करने के लिए स्वामी जी भगवान कृष्ण और नारद की घटना सुना रहे थे।

अब आगे...

नारद को और क्या चाहिए था! रमते राम का कोई घर–घाट था नहीं। चिन्ता कर रहे थे कि पत्नी को लेकर कहाँ जाएँगे। अब बना–बनाया घर मिल गया। शर्त स्वीकार हो गई। विवाह भी हो गया। नारद जी अपने–आपको भूलकर ससुरालवालों के पशु चराते, उनके खेतों में काम करते, उन्हीं के घर में रहने लगे। इस प्रकार कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। गृहस्थी नारद के दो–तीन बच्चे भी हो गए। तभी एक दिन मूसलाधार वर्षा होने लगी। एक दिन, दो दिन, कई दिन होती रही। सब ओर जल–थल एक हो गया। शेष लोग कहाँ–कहाँ पर बचे, यह नारद ने देखा नहीं। वे अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर मकान की दूसरी मंजिल में चले गये। वहाँ भी पानी पहुँचा तो छत पर चले गए, परन्तु बाढ़ तो रुकी नहीं। पानी छत के निकट पहुँचा तो नारद ने समझा कि मकान अब बचेगा नहीं। पत्नी और बच्चों सहित पानी में कूद पड़े कि किसी ऊँचे स्थान पर जाकर प्राण बचायें। परन्तु ऐसा करते ही दो बच्चे डूब गये। पत्नी रोने लगी तो नारद बोले, ''भागवान! रोती क्यों है? तू भी है, मै भी हूँ। बच्चे और हो जायेंगे।'' परन्तु तभी तीसरा बच्चा भी डूब गया। उसे ढूँढने के लिए नारद जी हाथ–पाँव मार ही रहे थे कि पानी का रेला आया, पत्नी भी डूब गई। बड़ी कठिनाई से नारद जी एक ऊँचे स्थान पर पहुँचे। वहाँ भी पानी था। थक वह बहुत गये थे। तैरने का अब प्रश्न उत्पन्न नहीं होता था, परन्तु धन्यवाद किया कि खड़े हो सकते हैं। पानी छाती तक था; तभी पानी ऊपर बढ़ा, कन्धों तक पहुँच गया, फिर ग्रीवा तक, ठोड़ी भी डूब गई। पानी होठों के पास पहुँचा तो नारद जी चिल्ला उठे, ''हे भगवान्, मुझे बचाओ!'' तभी याद आया कि वे तो भगवान् कृष्ण के लिए पानी लेने आये थे। रोकर बोले, ''क्षमा करो भगवन्!'' और तब कहानी है कि आँख खुल गई। नारद ने देखा कि कहीं कुछ भी नहीं। वे जंगल में पड़े हैं, सामने खड़े श्री कृष्ण मुस्करा रहे हैं; मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, ''नारद जी! आपके प्रश्न का उत्तर मिल गया या नहीं?'' प्रकृति की वास्तविकता को समझकर इससे छुटकारा पा लेना ही ब्रह्मज्ञान है। इससे मुक्ति पाये बिना ब्रह्म–दर्शन नहीं होता। परन्तु यहाँ प्रकृति–माया इतनी लुभानेवाली है कि इसके जाल में फँसा व्यक्ति तभी समझता है जब नाक तक पानी आ जाता है।

बहुत सुन्दर है यह माया, बहुत आकर्षक, परन्तु इसका अन्त है घोर दुःख। इसलिए मैं कहता हूँ कि ये आविष्कार जो पिछले सौ अथवा दो सौ वर्ष में हुए बहुत अच्छे हैं, परन्तु इनसे वास्तविक सुख कभी किसी को मिला नहीं; कभी मिलेगा नहीं एक समय था जब रात्रि में प्रकाश करने के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। लकड़ी या पत्थर को रगड़कर आग उत्पन्न की जाती थी, मिट्टी या धातु के दीपक में तेल डाला जाता था। उसमें कपड़े या रुई की बत्ती रक्खी जाती थी। उसे जलाया जाता था। ऐसे स्थान पद दीपक का रक्खा जाता था कि वह वायु से बुझ न जाय, वर्षा से बुरा न जाय। तब भी बहुत प्रकाश नहीं होता था। इतना परिश्रम, तब छोटा–सा दीपक, थोड़ा–सा प्रकाश! आज वह सब–कुछ नहीं करना पड़ता। आप बटन दबाते हैं, विद्युत्–बल्ब प्रकाशित हो जाता है। अत्यंत सुन्दर है वह। बहुत–सा परिश्रम उसके कारण बच गया। परन्तु क्या

इससे सुख मिल गया आपको? बिजली का प्रकाश तो आज प्रत्येक घर में है। क्या सुख और शान्ति भी प्रत्येक घर में है? देखो, यह माया है। बहुत ठगनी है यह। प्रत्येक बार ऐसा प्रतीत होता है कि इससे सुख मिलेगा, परन्तु सुख कभी मिलता नहीं। सुख उसे मिलता है जो इस ठगनी को ठग ले—

माया तो ठगनी भई,
ठगत फिरत संसार।
जिस ठग यह ठगनी ठगी,
उस ठग को नमस्कार।।

ओ इस ठगनी के जाल में फँसे लोगो! मायावाद के पुजारियो! विज्ञान के प्रकाश से अन्धे होनेवालो! सुनो, सुनो, सुनो! यदि तुम केवल मायावाद में पड़े रहे और इस ठगनी के जाल से बाहर न आ सके तो ऐसा नाश होनेवाला है जिसका तुमने स्वप्न में भी विचार नहीं किया होगा। इस विनाश से बचना कठिन नहीं। बचना चाहते हो तो सोचो कि मनुष्य के जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है? इस संसार में आप क्यों आये हैं?

यहाँ बैठा हुआ मैं कुछ बातें कर रहा हूँ आप सुन रहे हैं। यदि कोई आपसे पूछे कि आप यहाँ लोधी रोड आर्य समाज के उत्सव पर इस समय क्यों आये तो आप कह सकते हैं आनन्द स्वामी की कथा सुनने के लिए।

यह आसपास इतने मकानोंवाली, इतने क्वार्टरोंवाली, दुकानोंवाली और हरे—भरे मैदानोंवाली, यह लोधी कॉलोनी है। कोई आपसे पूछे कि यहाँ क्यों आये तो आप कह सकते हैं कि आजीविका कमाने के लिए।

परन्तु यदि कोई आपसे पूछे कि इस मानव—शरीर में क्यों आए? तो क्या कोई उत्तर आपके पास है? शायद आपके पास हो। परन्तु जो लोग प्रकृति—पूजा को अपना धर्म बनाये बैठे हैं, उनके पास तो कोई उत्तर नहीं। वे उद्देश्य को नहीं जानते, केवल इच्छा को जानते हैं कि मनुष्य प्रसन्नता चाहता है, सुख चाहता है; परन्तु बहुत प्रसन्नता हो तो भी सुख नहीं होता। तब यह चिन्ता जाग उठती है कि प्रसन्नता कहीं चली न जाय! बहुत प्रसन्नता होने पर आँखों में आँसू आ जाते हैं। इसलिए प्रसन्नता के साथ ही सन्ताप की कल्पना मनुष्य में जाग उठती है—

खुदा देता है जिनको ऐश उनको गम भी होते हैं।
जहाँ बजते हैं नक्कारे वहाँ मातम भी होते हैं।।

हाँ भाई! ऐसे भी विवाह होते हैं जिनमें शाम को बेटी का विवाह होता है, प्रातः सूर्योदय से पूर्व पिता के हृदय की गति बन्द हो जाती है। शहनाइयों की आवाज के स्थान पर चीख गूँज उठती है वहाँ। फूलों के स्थान पर आँसू बरसने लगते हैं। कभी—कभी प्रसन्नता ही दुःख का कारण बन जाती है। और फिर धन को देखो! अकबर ने कहा था कि यूरोप के लोग बर्क़ और भाप को खुदा समझ बैठे हैं। परन्तु आज यूरोप वाले ही क्यों, सारा संसार धन को ही ईश्वर समझे बैठा है। इस प्रकार इसकी पूजा करने लगे हैं जैसे यही सब—कुछ है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। मैं धन—सम्पत्ति की निन्दा नहीं करता। उसे कमाओ अवश्य, परन्तु मेरी बात को स्मरण रक्खो कि धन में सुख नहीं है। मैं लखपतियों से मिला हूँ, करोड़पतियों से मिला हूँ, परन्तु उनके मन में सुख तो मैंने देखा नहीं। प्रत्येक ने एक ही बात कही कि ''सब—कुछ होने पर भी सुख नहीं हूँ।'' मोटरें हैं, महल हैं, नौकर हैं, परिवार हैं, सब—कुछ है परन्तु हृदय में बैठा हुआ कोई इसे कुरेद रहा है, घाव किये देता है। एक बार रणवीर ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुए अमेरिका के कुछ अमीरों की दशा लिखी। उसने बताया कि 1932 में शिकागो के 'बीच होटल' में अमेरिका के बड़े—बड़े पूँजीपतियों की मीटिंग हुई। उसमें अमेरिका की सबसे बड़ी लोहा—कम्पनी का प्रधान था; 'नेशनल सिटी बैंक ऑफ न्यूयार्क' का प्रधान था; गैस उत्पन्न करनेवाली कम्पनी का प्रधान था। इस प्रकार व्यापार के, तेल—व्यवसाय के, वस्त्र—उद्योग के, स्टॉक—एक्सचेंज के तथा दूसरे उद्योग—धन्धों के वे लोग थे जिनसे अधिक धनी उनकी लाइन में दूसरा नहीं था। सब करोड़पति, सब एक—एक दिन में लाखों का लेन—देन करनेवाले। 25 वर्ष पश्चात् उन लोगों के सम्बन्ध में जाँच हुई कि वे कहाँ हैं और किस दिशा में हैं तो पता चला कि लोहा—कम्पनी का प्रधान पागल होकर मर गया। बैंक का प्रधान जेल में है। गैस—कम्पनी के प्रधान की गिरफ्तारी के वारण्ट निकले हुए हैं और उसका पता नहीं लगता। सबका अन्त भयानक था, सबका अन्त दुःखदायी था।

यह तो दूर की बात है। पंजाब में लाला हरकिशनलाल जी थे, जिन्हें उद्योग और व्यापार का महाराजा कहा जाता था। कराड़ों में वे खेलते थे। लाखों कमाते, लाखों खर्च करते थे। परन्तु अन्त में मरे तो एक होटल में, पागल होकर दैन्य अवस्था में। कोई भी पास नहीं था। दैन्य अवस्था में रात्रि को सोये, पता नहीं किस समय हार्ट फेल हो गया, प्राण निकल गये।

नहीं, व्यापार में सुख नहीं, धन में भी नहीं। तब क्या विद्या में सुख है? विद्या का अर्थ है जानना। परन्तु इस जानने का क्या कोई अन्त है? ज्यों—ज्यों आगे बढ़िये, त्यों—त्यों ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ अब तक जाना वह कुछ भी नहीं, जिसे नहीं जाना वह बहुत है। विद्या की दशा यह है कि आज तक हम यह नहीं जान सके कि अकेले हिमालय पर्वत पर कितनी वनस्पतियां होती हैं, कितनी प्रकार की घास, पौधे, फल और फूल हैं। हिमालय बहुत बड़ा होने पर भी पृथिवी के सम्मुख तो बहुत छोटा है। हिमालय की बात ज्ञात नहीं तो फिर पृथिवी की बात कौन कहे! इस सूर्यमण्डल की, इससे बड़े महासूर्यमण्डल की और इस महान् विश्व की बात कौन कहे जिसमें अरबों महासूर्यमण्डल हैं, कितनी ही पृथिवियाँ हैं। नहीं, विद्या से कभी किसी को शान्ति नहीं मिलती। विद्या उत्तम है, उसे प्राप्त करना चाहिए अवश्य, परन्तु यदि कोई समझे कि उसे शान्ति मिल जायेगी तारे याद रखो कि ऐसा होगा नहीं।

तब क्या शारीरिक शक्ति में सुख है? शारीरिक शक्ति हो तो अच्छी बात है। रोगी होकर, निर्बल होकर रहना अच्छा नहीं परन्तु शारीरिक शक्ति चाहे कितनी भी हो किन्तु उसका अन्त होता है। बड़े—बड़े पहलवान भी अन्त में रोगी होकर मरते हैं।

प्रसन्नता, धन, सम्पत्ति, शक्ति, विद्या, इनका अन्त में नाश होता है। किसी में भी मनुष्य को सन्तोष नहीं होता, उसकी तृप्ति नहीं होती, भूख नहीं मिटती। ये सब—के—सब जीवन के साधन हैं अवश्य, जीवन के उद्देश्य नहीं। जीवन का उद्देश्य वह है जिससे आत्मा की तृप्ति हो जाय, उसकी भूख मिट जाय, किसी भी दूसरी वस्तु की इच्छा न रहे।

परन्तु प्रकृतिपूजकों का संसार, मार्ग को ही लक्ष्य समझ बैठा है। साधन को उसने उद्देश्य समझ लिया है। प्रत्येक बात का उद्देश्य उसकी समझ में आता है, केवल अपने जीवन का उद्देश्य उसे पूरा पता नहीं। एक व्यक्ति बाजार से दो बड़ी लकड़ियाँ खरीदता है तो दो छोटी। चार पावे खरीदता है, कुछ सूत्री। सबको इकट्ठा करके बुनना शुरू करता है। उससे पूछिए कि यह सब कुछ क्यों कर रहे हो? तो वह कहेगा—चारपाई बना रहा हूँ।" पूछिये— "चारपाई बनाकर क्या करेगा?" तो वह कहेगा— "सोऊँगा।" यह ठीक उत्तर है। छोटी—सी चारपाई का उद्देश्य हम जान सकते हैं; इतने बड़े मानव—जीवन के उद्देश्य का ही पता नहीं!

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय में एक मन्त्र आता है। उसमें इस उद्देश्य के सम्बंध में कुछ मनोरंजक प्रश्नोत्तर हैं।

प्रश्न होता है कि **'कस्त्वा युनक्ति?'** इस शरीर के साथ तुझे, तेरे आत्मा को किसने जोड़ दिया।

उत्तर मिलता है **'स त्वा युनश्ति?'** अर्थात् ईश्वर ने जोड़ दिया।

फिर प्रश्न होता है **'कस्मै त्वा युनक्ति?'** अर्थात् किसलिए जोड़ दिया।

उत्तर मिलता है **'तस्मै त्वा युनक्ति'** उसके लिए अर्थात् परमात्मा को पाने के लिए जोड़ दिया है।

और तब अन्त में कहा, **'कर्मणे वां वेषाय वाम्'** – परमात्मा को पाने का मार्ग यह है कि कर्म कर, ज्ञान प्राप्त कर, उपासना के मार्ग को अपना।

शेष अगले अंक में....

गुरु को पहचान

गुरु जो ढूढ़न मैं चला, सद्गुरु मिला न कोय।
अर्थ संचय में सभी लगे, त्याग करे नहिं कोय।।
गुरु भया तो क्या भया, धन के भर लिए भंडार।
परोपकार कुछ करे नहीं, कहता नश्वर संसार।।
नामदान हम नित करें, करो बहुत तुम दान।
पापमुक्त हो जाओगे, गुरु का यह वरदान।।
शिष्य चाहते बिनु श्रम के, होवे नित कल्याण।
गुरु कहें करते रहो, तन—मन—धन का दान।।
शिष्य त्याग का पाठ पढ़ें, गुरु करें विविध व्यापार।
आश्रम सुख सुविधासेभरे,कैसे होंगे भव से पार।।
वेद पढ़े न शास्त्र को कान में फूंके गुरुमन्त्र।
इसी में है कल्याण तव, मुक्ति होय तुरन्त।।
योग कहें योगासन करें, देख गुरु संसार।
धन विदेश नहि जात है, देशहित करत व्यापार।।
देखो त्यागियों के महल, ब्रह्मचारी की सन्तान।
हो रहा शोर मैनियों में, सब देख रहे हैरान।।
त्यागी, तपस्वी और मनस्वी, हो वेदों का विद्वान।
निर्मल चरित्र बनाए शिष्य का सद्गुरु उसी को जान।।

पण्डित वेद प्रकाश शास्त्री
4—E कैलास नगर
फाजिल्का—152123

आर्य समाज के विचारों से प्रभावित—प्रेमचन्द

● डॉ. भवानी लाल भारतीय

अपने समकालीन साहित्यकारों की भांति उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचंद स्वामी दयानन्द तथा आर्य समाज के विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे। द्विवेदी युग के प्रायः अधिकांश कवि और लेखक आर्यसमाज की धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय प्रगतिशील विचारधारा को वरीयता देते थे। अपने युवाकाल में जब वे अध्यापक थे, बुन्देलखण्ड की आर्यसमाजों के सदस्य रहे तथा प्रति मास चंदा देते रहे। उनके साथी कथाकार पंजाब के सुदर्शन भी आर्यसमाजी थे। प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यास प्रतिज्ञा का आरम्भ आर्यसमाज की एक मीटिंग से किया है जिसमें विधवा–विवाह की स्वीकृति का प्रस्ताव पास किया जाता है और मुन्शी दान नाथ प्रतिज्ञा करते हैं कि वे स्वयं विधुर हैं और विधवा से विवाह करेंगे। प्रेमचन्द ने स्वयं एक बाल विधवा शिवरानी से विधवा–विवाह किया था जो स्वयं लेखिका थीं। उन्हें दो बार आर्यसमाज के सभा–सम्मेलनों को सम्बोधित करने का अवसर मिला। प्रथम बार वे गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की साहित्य परिषद् के अध्यक्ष बने और प्रसिद्ध लेखक पं. पद्मसिंह शर्मा से विचार विनिमय किया। दूसरी बार सम्मेलन लाहौर में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की स्वर्ण जयन्ती पर आयोजित किया गया था। इस अवसर पर दिये गये इस भाषण का मूल पाठ तलाश कर यहां दिया जा रहा है।

''मैं तो आर्यसमाज को जितनी धार्मिक संस्था समझता हूँ उतनी ही तहज़ीबी (सांस्कृतिक) संस्था भी समझता हूँ। बल्कि आप क्षमा करें तो मैं कहूंगा कि उसके तहज़ीबी कारनामे उसके धार्मिक कारनामों से ज्यादा प्रसिद्ध और रोशन हैं। आर्यसमाज ने साबित कर दिया है कि समाज की सेवा ही किस धर्म के सजीव होने का लक्षण है। सेवा का ऐसा कौन सा क्षेत्र है जिसमें उसकी कीर्ति की ध्वजा न उड़ रही हो। कौमी जिन्दगी की समस्याओं को हल करने में उसने जिस दूरंदेशी का सबूत दिया है, उस पर हम गर्व कर सकते हैं। हरिजनों के उद्धार में सबसे पहले आर्यसमाज ने कदम उठाया, लड़कियों की शिक्षा की ज़रूरत सबसे पहले उसने समझी। वर्ण व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत सिद्ध करने का सेहरा उनके सिर है। जाति भेदभाव और खानपान के छूतछात और चौके चूल्हे की बाधाओं को मिटाने का गौरव उसी को प्राप्त है। यह ठीक है कि ब्रह्मसमाज ने इस दिशा में पहले कदम रक्खा पर वह थोड़े से अंग्रेज़ी पढ़े लिखों तक ही रह गया। इन विचारों को जनता तक पहुंचाने का बीड़ा आर्यसमाज ने ही उठाया। अंधविश्वास और धर्म के नाम पर किये जाने वाले हज़ारों अनाचारों की कब्र उसने खोदी, हालांकि मुर्दे को उसमें दफन न कर सका और अभी तक उसकी जहरीली दुर्गंध उड़ उड़ कर समाज को दूषित कर रही है।

समाज के मानसिक और बौद्धिक धरातल को आर्यसमाज ने जितना उठाया है, शायद ही भारत की किसी संस्था ने उठाया हो। उसके उपदेशकों ने वेदों और वेदांगों के गहन विषयों को जनसाधारण की सम्पत्ति बना दिया, जिन पर विद्वानों और आचार्यों के कई–कई लीवर वाले ताले लगे हुए थे। आज आर्यसमाज के उत्सवों और गुरुकुलों के जलसों में हजारों मामूली लियाकत के स्त्री पुरुष सिर्फ विद्वानों के भाषण सुनने का आनन्द उठाने के लिए खिंचे चले आते हैं। गुरुकुलाश्रम को नया जन्म देकर आर्यसमाज ने शिक्षा को सम्पूर्ण बनाने का महान् उद्योग किया है। शायद ही मुल्क में कोई ऐसी शिक्षा संस्था हो जिसने कौम की पुकार का इतना जवांमर्दी से स्वागत किया हो। आर्यसमाज ने हमारी भाषा के साथ जो उपकार किया है, उसका सबसे उज्ज्वल प्रमाण यह है कि स्वामी दयानन्द ने इसी भाषा में सत्यार्थप्रकाश लिखा और उस वक्त लिखा, जब उसकी इतनी चर्चा न थी। उनकी बारीक नज़र ने देख लिया अगर जनता में प्रकाश ले जाना है तो उसके लिए हिन्दी भाषा ही अकेला साधन है। गुरुकुलों ने हिन्दी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर अपने भाषा प्रेम को और भी सिद्ध कर दिया है।

आर्यसमाज ने जिस तरह के विषयों का जनता में प्रचार किया है उन विषयों को साधारण पढ़ा लिखा आर्यसमाजी भी खूब समझता है।

–नन्दन वन, जोधपुर

कर्म करते हुए जीना

● डॉ. रूपचन्द्र 'दीपक'

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरः।।

–यजुर्वेद अध्याय–40, मन्त्र–2

मनुष्य की योनि कर्म के लिए है। अन्य समस्त योनियाँ भोग के लिए हैं। इन योनियों की संख्या अज्ञात है। ये जो चौरासी लाख योनियाँ बतायी गई हैं, यह एक बड़ी संख्या बताने के लिए कल्पना कर ली गई है। वस्तुतः ईश्वर ही जानता है कि कुल योनियाँ कितनी हैं। वेद–शास्त्र में ऐसी कोई संख्या नहीं दी गई है। मनुष्य सर्वज्ञ हो भी नहीं सकता। उसे ज्ञान एवं कर्म पर ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए। उसका मन सदा मनन करता रहता है, वाणी प्रायः भाषण में लगी रहती है और हर समय कोई–न–कोई कर्म सम्मुख होता है। वह मन–वचन–कर्म को सावधानी एवं साधना में रखे, यही शास्त्र की शिक्षा है।

मनुष्य को सदा वेद–सम्मत कर्म करने चाहिए। ये ही पुण्य कर्म कहलाते हैं। इन्हीं कर्मों से स्वर्ग मिलता है और इन्हीं से मोक्ष। सांसारिक पदार्थों की इच्छा से वैदिक कर्म किये जाएँ तो सुख, समृद्धि एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है। परमार्थ भाव से वैदिक कर्म किये जाएँ तो शान्ति, आनन्द और मोक्ष की प्राप्ति होती है। वेद–विरुद्ध कर्म ही पाप कर्म कहलाते हैं। अतः इन कर्मों से सदा बचना चाहिए। विदुर–नीति के अनुसार –

पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम्।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते।।

पाप करने से अपयश मिलता है और दुःख भोगना पड़ता है। पाप से बुद्धि भी नष्ट होती है, जो मनुष्य से बार–बार पाप कराती है। पुण्य करने से उत्तम यश मिलता है और सुख की प्राप्ति होती है। पुण्य से बुद्धि भी बढ़ती है, जो मनुष्य से सदा उत्तम कर्म कराती है। अतः मनुष्य पाप से सदा बचे और उत्तम कर्म ही सदा किया करे। लिप्तता से बचने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

उत्तम जीवन के लिए केवल यह पर्याप्त नहीं है कि अधिक–से–अधिक कर्म किये जाएँ अपितु यह भी आवश्यक है कि इन कर्मों को कुशलता एवं दक्षतापूर्वक किया जाए। यदि मनुष्य प्रयत्नपूर्वक दूध एकत्र करे और उसमें एक बूँद अशुद्धि डाल दे तो सम्पूर्ण दूध व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार अनेक उत्तम कर्म करके एक खोटा काम कर बैठे तो कर्म–संग्रह उत्तम नहीं रहता। अतः साधक को चाहिए कि वह बोले तो उत्तम बोले, लिखे तो उत्तम लिखे, सेवा भी उत्तम करे और दान भी उत्तम करे। उसका स्वास्थ्य, अध्ययन, चिन्तन, संगति, विद्या, चरित्र, वृत्ति, चेष्टा, स्वभाव एवं उपासना सब उत्तम होनी चाहिए।

जीवन किसी एक कर्म के अधीन नहीं है अपितु कर्मों एवं कर्त्तव्यों की संख्या विशाल है। मनुष्य को अपने सुख–स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए, परिवार का भरण–पोषण करते हुए, समाज में दान एवं सहयोग देते हुए, राष्ट्र की सेवा एवं राक्षा करते हुए, विश्व में प्रेम एवं शांति रखते हुए तथा ईश्वर की उपासना एवं आज्ञा–पालन करते हुए जीना है। इन समस्त कर्मों एवं कर्तव्यों को सुविधा के लिए पाँच भागों में बाँटा गया है और महायज्ञ बताया गया है– (1) ब्रह्मयज्ञ अर्थात् ईश्वर की उपासना एवं वेद का अध्ययन करना; (2) देवयज्ञ अर्थात् दैनिक होम और विद्वानों का सदा आदर करना; (3) पितृयज्ञ अर्थात् माता–पिता की सेवा और सन्तान का सुनिर्माण करना; (4) अतिथि–यज्ञ अर्थात् परोपकारी धर्मात्मा विद्वान् अतिथियों का आदर–सत्कार एवं सहयोग करना; (5) बलिवैश्वदेव–यज्ञ अर्थात् दरिद्र, अनाथ, रोगी, वृद्ध, असहाय व्यक्तियों और पशु–पक्षियों के अन्न–पान आदि की व्यवस्था करना। इन समस्त कर्मों को करते हुए ही सौ वर्ष अर्थात् आयु–पर्यन्त जीने की इच्छा करनी चाहिए।

उत्तम जीवन के लिए केवल यह पर्याप्त नहीं है कि अधिक–से–अधिक कर्म किये जाएँ अपितु यह भी आवश्यक है कि इन कर्मों को कुशलता एवं दक्षतापूर्वक किया जाए। यदि मनुष्य प्रयत्नपूर्वक दूध एकत्र करे और उसमें एक बूँद अशुद्धि डाल दे तो सम्पूर्ण दूध व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार अनेक उत्तम कर्म करके एक खोटा काम कर बैठे तो कर्म–संग्रह उत्तम नहीं रहता। अतः साधक को चाहिए कि वह बोले तो उत्तम बोले, लिखे तो उत्तम लिखे, सेवा भी उत्तम करे और दान भी उत्तम करे। उसका स्वास्थ्य, अध्ययन, चिन्तन, संगति, विद्या, चरित्र, वृत्ति, चेष्टा, स्वभाव एवं उपासना सब उत्तम होनी चाहिए।

गीता (अध्याय–2, श्लोक–50) में भी कहा गया है कि "योग कर्मसु कौशलम्" अर्थात् योगी वह है जो सब कर्मों को कुशलता एवं दक्षतापूर्वक करता है। दक्षतापूर्वक किये गये कर्म ही यश दिलाते हैं। कुशलतापूर्वक किये हुए कर्म ही शान्ति प्रदान करते हैं। बुझे हुए सौ दीपक एक जलते हुए दीपक की बराबरी नहीं कर सकते। घर में दस जर्जर द्वार होने से अच्छा है चार सुदृढ़ द्वार हों। अशोभनीय चार वस्त्र रखने से अच्छा है शोभनीय दो वस्त्र रखें। इसी प्रकार अच्छे–बुरे असंख्य कर्म करने से श्रेष्ठतर है कि जितने कर्म करें उत्तम–ही–उत्तम करें। वेद की शिक्षा है कि कर्म करते रहो,

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका– क्या हजारों वैज्ञानिकों की तुलना में एक ब्रह्मवेत्ता द्वारा संसार का उपकार अधिक होता है?

समाधान– हाँ! बिल्कुल अधिक होता है। ये सैकड़ों वैज्ञानिक मिलकर के विज्ञान के आविष्कार तो कर देंगे और अच्छी चीजें भी बनायेंगे, बना भी रहे हैं। इन्होंने बड़ा अच्छा परिश्रम किया, हम इनकी प्रशंसा करते हैं। लेकिन **जो मनुष्य की मूल आवश्यकता है, उसकी पूर्ति वैज्ञानिक लोग नहीं कर सकते।** ये रेडियो बना देंगे, टेलीविजन बना देंगे, सैटेलाइट बना देंगे, कम्प्यूटर बना देंगे, मोबाइल फोन बना देंगे, सारी सुविधा दिला देंगे, पर व्यक्ति को इससे आगे शांति भी चाहिये। वो शांति ये नहीं दिला सकते। वो इनके बस की बात नहीं है। **हजारों वैज्ञानिक भी मिलकर के मनुष्य की अंतिम इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकते लेकिन एक ब्रह्मवेत्ता कर सकता है। वो लोगों को शांति दिला सकता है। उसके पास समाधान है।** जैसे एक विद्यार्थी गया था कांकरिया तालाब में डूबने के लिये, तो एक वृद्ध व्यक्ति ने उसको समझा दिया न, और उसको समझ में आ गई बात। फिर उसने मरना कैन्सिल कर दिया। तो ऐसे ही एक ब्रह्मवेत्ता लोगों की आखिरी इच्छा पूर्ण कर सकता है।

जब तक व्यक्ति के पास शांति नहीं है, तब तक उसके पास सारे साधन होते हुये भी उसका जीवन व्यर्थ है। वेद आदि शास्त्र, ऋषि मुनि लोग इस बात को मानते हैं, कि यदि आपके पास शांति है, तो सब कुछ है। और शांति नहीं है, तो कुछ भी नहीं है। भौतिक साधन कितने भी हों, उससे आपका जीवन संतुष्ट नहीं होगा, तृप्त नहीं होगा। और फिर अन्त में लोगों को वही समाधान दिखता है–जापान वाला। आत्महत्या कैसे करें?

शंका– क्या व्यक्ति को बुरे कर्म करने के पश्चात् अन्य सभी योनियों को भोगना पड़ेगा अथवा कुछ योनियों के पश्चात् वापस मानव जन्म मिलेगा?

समाधान– एक व्यक्ति ने 20 हजार रुपये की चोरी की, दूसरे व्यक्ति ने दो अरब रुपये की चोरी की। **चोरी दोनों ने की, इसलिए दोनों अपराधी हैं।** निःसंदेह दोनों को दण्ड मिलेगा।

क्या दण्ड की मात्रा दोनों की समान रहेगी, या कम अधिक? दण्ड की मात्रा कम–अधिक होगी। क्योंकि दोनों को बराबर दण्ड दिया जाये, तो यह न्याय थोड़े ही होगा, यह तो अन्याय होगा। **एक ने अपराध थोड़ा किया, तो उसको थोड़ा दण्ड। और एक ने अधिक अपराध किया, तो उसको अधिक दण्ड, यह न्याय है।** किसी ने 20 हजार पाप किये, किसी ने 50 हजार पाप किये। और दोनों को ही 84 लाख योनियों में डाल दें, तो फिर यह न्याय कहां होगा? जिसने जितना अपराध किया, उतनी ही योनियों में जायेगा, दण्ड भोगा, धक्का खायेगा और लौटकर वापस मनुष्य बनेगा। जिसने थोड़ा अपराध किया, वह थोड़ी योनियों में धक्का खायेगा। जिसने ज्यादा अपराध किये, वो ज्यादा योनियों में जायेगा। इसलिये सब को 84 लाख योनियों में नहीं जाना। यही न्याय है।

शंका–वेद के होते हुए भी 'गीता' का उपदेश देने का क्या प्रयोजन है?

समाधान–गीता बहुत अच्छी पुस्तक है, उसमें बहुत सारी बातें ठीक हैं। वे वेद व्यास जी की लिखी हैं। उसमें श्रीकृष्ण जी का उपदेश है। जो व्यक्ति कर्तव्य से विमुख हो गया, उसको कर्तव्य परायण बनाने के लिये ग्रन्थ है। व्यक्ति उसको पढ़ के जोश में आयेगा और अपना काम शुरू कर देगा। बस गीता का इतना ही प्रयोजन है।

★ **गीता का उपदेश किसने दिया था? श्रीकृष्ण जी ने। किसको दिया था? अर्जुन को। कहाँ पर दिया था? युद्ध के मैदान में। क्यों दिया था? अर्जुन बेचारा ढीला पड़ गया था।** ये सारे चाचा–मामा, ताऊ सामने खड़े हैं। इनको मारूंगा, तो मुझे पाप लगेगा, मुझे तो नरक में जाना पड़ेगा। मैं नहीं लड़ूँगा, वो बेचारा घबरा गया, उसको भ्रान्ति हो गई, उसने हथियार छोड़ दिये।

★ इस स्थिति में श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को उपदेश दिया। क्या उपदेश दिया? अर्जुन देख, इस समय तेरी बुद्धि काम नहीं कर रही। तुझे भ्रान्ति हो गई है। तू यह समझता है कि ये चाचा–मामा, ताऊ सारे मार डालेगा, तो पाप लगेगा। तुझे पाप नहीं लगेगा। मैं ठीक होश में हूँ और जो कहता हूँ, मेरी बात सुन। तेरी बुद्धि इस समय ठीक काम नहीं कर रही है। तू इनको मार, तुझे कोई पाप नहीं लगेगा।

★ क्यों मार ? क्षत्रिय का धर्म क्या है? जो अन्याय के विरुद्ध लड़ता है, वो क्षत्रिय कहलाता है। **जो अन्यायी का विनाश करे, वो क्षत्रिय है। अब ये सारे जितने लोग खड़े हैं, सब अन्याय के पक्ष में हैं, तो इनको मारना तेरा धर्म है।** अब तू अपने धर्म का पालन नहीं करेगा, तो लोग क्या कहेंगे, कि अर्जुन तो कायर था, मैदान में पीठ दिखाकर भाग गया, हथियार छोड़कर भाग गया। क्षत्रिय तो अपने धर्म का पालन करता है। अन्यायकारियों को मारना, यह क्षत्रिय का धर्म है। तू क्षत्रिय है, उठा अपने तीर–तलवार और मार इन लोगों को। फिर तुझे क्यूँ लगता है, कि मैं इन चाचा–मामा, ताऊ को मारूंगा, तो मुझे पाप लगेगा।

★ अब यह तो **प्रासंगिक** बात आ गई है कि चाचा–मामा, ताऊ, गुरु रिश्तेदार जो भी हैं, ये तो आत्मायें हैं। रिश्ता किन से है, आत्माओं से है, या शरीर से है? रिश्ता तो आत्माओं से है, और आत्मा तो मरती नहीं। फिर तू क्यों डरता है, किसको मार डालेगा, कोई नहीं मरने वाला। **यह तो प्रासंगिक बात थी, जो उसकी भ्रान्ति दूर करने के लिये कहना पड़ीं और लोगों ने इसी को ऊंचा चढ़ा दिया।** आत्मा अजर–अमर है, इसको जान लो, इसका साक्षात्कार करो, इसी से मुक्ति हो जाती है। यह कोई मुक्ति प्राप्ति के लिये उपदेश नहीं था। **यह तो एक ढीले–ढाले क्षत्रिय को जोश दिलाने वाला ग्रन्थ था।** और कृष्ण जी ने बड़ी बुद्धिमत्ता से उपदेश दिया और वे अपने कार्य में सफल हो गये। अर्जुन की भ्रान्ति दूर हो गई और उसने कहा ''ठीक है गुरुजी, बात मेरी समझ में आ गई। मैं लड़ूँगा। योगेश्वर, मेरी बुद्धि ठीक हो गई,। अब सारी भ्रांति दूर हो गई। अब आप जो कहते हो, वहीं करूंगा। लाओ, मेरा हथियार कहाँ है।'' तो यह थी गीता। इस इतिहास का ग्रन्थ है, क्षत्रियों का ग्रन्थ है। उस भावना से गीता को पढ़िये।

★ **आपको पता है कि गीता कहाँ से निकली? 'उपनिषद' में से। उसके महत्व में यही तो लिखा है न। गीता जो है, उपनिषद का सार है। और उपनिषद कहाँ से आये? वो वेद का सार हैं। इस तरह गीता तो सार का भी सार है। सार का सार पढ़ेंगे, तो थोड़ी जानकारी होगी। ओरिजिनल टैक्स्टबुक पढ़ेंगे, तो आपकी नॉलेज अच्छी होगी। वेद ओरिजिनल टेक्स्टबुक है, वो ईश्वर ने दिया।** और उसका सार उपनिषद है। और उसका भी सार गीता है।

★ **यदि मोक्ष में जाना हो, तो उसके लिये दर्शन है, उपनिषद है, वेद हैं, इन ग्रन्थों का पढ़िये।** तब आपका मोक्ष होने वाला है।

★ 'टैक्स्टबुक' पढ़ने से अधिक अच्छी जानकारी होती है, या ट्वेन्टी इम्पोर्टेन्ट क्वेश्चन पढ़ने से ज्यादा अधिक जानकारी होती है? 'टैक्स्टबुक' पढ़ने से अच्छी नॉलेज होती है। गीता कोई 'टैक्स्टबुक' है क्या? गीता को 'ट्वेन्टी इम्पॉर्टेन्ट क्वेश्चन' सीरीज है। ओरिजनिल टैक्स्टबुक को पढ़िये। वो 'वेद' है। वेद पढ़िये, फिर आपका नॉलेज अच्छा होगा और फिर आप मोक्ष में जा सकते हैं।

★ कुछ गड़बड़ बातें बाद में लोगों ने इसमें मिक्स कर दीं। उनको अलग कर दीजिये और जो अच्छी बातें हैं, उन्हें स्वीकार कीजिये।

दर्शन योग महाविद्यालय
ग्राम–रोजड़, पोस्ट–सागपुर
ता. तलोद, जिला–साबरकांठा
रोजड़ (गुजरात)

यज्ञीय सूक्तियां

1. **आज्यस्य होतर्यज।।** यजु. 21/29
   हे होता! घृत का हवन करो।
2. **आयुर्यज्ञेन कल्पताम्।।** यजु. 9/21
   यज्ञ से हमारी आयु में वृद्धि हो।
3. **ईजाना स्वर्गं यन्ति लोकम्।।** अथर्व. 18/4/2
   यज्ञशील स्वर्गलोक (सुखविशेष) प्राप्त करते हैं।
4. **देवान् यज्ञेन बोधय।।** अथर्व. 19/63/1
   देवों (देवत्व) को यज्ञ से जागृत करो।
5. **यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नम्।।** यजु. 8/4
   देवों को यज्ञ सुखों को उत्पन्न करता है।

अहं के त्याग से ही प्रभु का साक्षात्कार होगा

● कन्हैयालाल आर्य

जब तक देह की ममता रहेगी, तब तक किए कर्म हमारे लिए बन्धन का कारण बनते रहेंगे। जब तक देह में आसक्ति रहेगी, विकार हमारा पीछा न छोड़ेंगे। जब तक देह का ध्यान बना रहेगा, तब तक प्रभु के गीत हम न गा सकेंगे। जब तक हम अपने आप को देह मानते रहेंगे, तब तक परम पिता परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो पायेगा। हृदयपूर्वक, श्रद्धा एवं ज्ञान का सहारा लेकर प्रभु से प्रार्थना करो– हे दया के सागर! मुझे बल दे, मुझे साहस दे, मैं तेरे द्वारा पर आया हूं। तेरे पास अक्षय भंडार है। मैं इस देह की ममता को छोड़कर आपसे मिलाना चाहता हूं। शरीर को मैं केवल साधन बनाना चाहता हूं, साध्य नहीं। हम खाने के लिए नहीं जीना चाहते, जीने के लिए खाना चाहते हैं। बस ज्यों–ज्यों यह स्थिति होती जायेगी, विवेक प्रवेश करता जायेगा, वैराग्य आता जायेगा। यह विवेक वैराग्य श्मशान वैराग्य नहीं होगा।

हमें कई बार कुछ घटनायें श्मशान वैराग्य की स्थिति में ले आती हैं। कोई मृत्यु घर में आ जाये और मृत्यु भी किसी अत्यधिक प्रिय की या व्यापार में कोई बहुत बड़ी हानि हो जाये या कोई बड़ा अपमान, अपयश मिल जाये– ऐसी कुछ परिस्थितियां हैं जिन में क्षणिक वैराग्य होता है, इसे श्मशान वैराग्य कहते हैं। वास्तविक वैराग्य तो तबा होता है जब व्यक्ति की लौ परम सत्तावान् से जुड़ती है। वैराग्य हुआ था शंकराचार्य को, छोटी आयु में संयास लेने की ठान लेता है, वैराग्य हुआ था राजकुमार सिद्धार्थ को और वह बुद्ध बन गया, वैराग्य हुआ था मूलशंकर को जो विश्व की धरा पर आर्य समाज जैसी पवित्र संस्था का निर्माण कर संसार को एक पवित्र दिशा दे गया। वैराग्य हुआ था मुन्शीराम को। सारी संपत्ति गुरुकुल को प्रदान कर विश्व में प्राचीन गुरुकुलीय प्रणाली को पुनर्जीवित किया। यह है सच्चा वैराग्य जो मानव को उच्च स्थिति प्राप्त करा देता है। बिना विवेक और वैराग्य के ब्रह्मा जी का उपदेश भी हमारे काम नहीं आयेगा।

विवेक और वैराग्य होते ही ज्ञान की ज्योति जल उठेगी। शरीर की ममता टूटने लगीशरीर की ममता से मोह भंग होगा तो सब संबंध ढीले होते जायेंगे। अहंता–ममता टूटने पर हमारा व्यवहार प्रभु जैसा व्यवहार बन जायेगा। हमारा बोलना प्रभु प्राप्ति का साधन बन जायेगा। हमारा देखना, सुनना सब भगवान् प्राप्ति के लिये हो जायेगा। केवल आवश्यकता है अहं भाव तोड़ने की, शरीर के प्रति ममता त्यागने की।

महर्षि दयानन्द के पिता ने रोका। पिता पुत्र को संसारिक बन्धनों में बांधना चाहते थे परन्तु मूलशंकर तो सच्चे शिव की खेज में इस शरीर के मोह से ऊपर उठ चुका था। ममता, मोह के त्याग ने ही मूलशंकर को स्वामी दयानन्द सरस्वती बना दिया। उन्होंने विचार किया कि परिवार, संबंधी, मित्रगण इनकी ममता का बन्धन संसार से जकड़न बढ़ाता जायेगा। बहिन की मृत्यु से कुछ मोह भंग हुआ था, चाचा की मृत्यु ने उसे पूर्ण रूप से वैराग्यवान् बना दिया और परिणाम यह हुआ कि सच्चे शिव की खोज में उस महामानव ने अपने आप को आहुत कर दिया। यह था सच्चा वैराग्य उन्होंने परिवार के मोह को ज्ञान की कैंची से काट दिया। प्रभु के मार्ग में, आत्मसाक्षात्कार के मार्ग में दुनिया के किसी भी व्यक्ति को आड़े नहीं आने दिया। उसने अन्दर की चेतना का सहारा लिया।

दुःख और चिन्ता, असफलता और हतोत्साहित होना यह सब अन्दर से उत्पन्न होता है। प्रत्येक आत्मा अन्दर से इन परिणामों से युद्ध करती है परन्तु जो उच्च आत्मायें होती हैं वे सफल हो जाती हैं। परन्तु दुर्बल आत्मायें पराजित होकर इस संसार चक्र के बन्धनों में अपने आप को बांध लेती हैं और आवागमन के चकक्र में पड़ी रहती हैं। हमें भीतर से दीनहीनता एवं क्षुद्रता को त्यागना होगा। परिस्थितियों के आगे झुक जाने के स्थान पर परिस्थितियों को अपने अनुकूल ढालना होगा। हमें विद्वानों की अनुभूतियों, अनुभवों का सहारा लेना होगा। हम कब तक डरते रहेंगे? हमें अभय होना होगा। कब तक हम नेताओं को, व्यापारियों को, धनपतियों को रिझाते रहेंगे? अब हमें अपने आप को रिझाना होगा। एक बार हम अपने आप से मित्रता कर लें, तो पूरा विश्व मित्र बन जायेगा। जब तक कुछेकों से मित्रता करेंगे, कुछ शत्रु भी पाल लेंगे। और जब हम अपने आप से मित्रता कर लेंगे तो हमारा कोई शत्रु नहीं रहेगा। हम प्रतिदिन अपनी पत्नी से, पति से, माता से, पिता से, पुत्र–पौत्रों से, संबंधियों–विद्वानों से, नेताओं से न जाने किन–किन से बातें करते हैं। परन्तु दुःख की बात यह है कि हम कभी स्वयं से बात नहीं करते। जिस दिन हम स्वयं से बात करने लगेंगे उस दिन से हमारी आत्मा में उज्ज्वलता आनी प्रारंभ हो जायेगी। ''आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पश्यति'' की भावना हमारे अन्दर आ जायेगी। परन्तु यह तब होगा जब हम अपने आप से मित्रता कर लेंगे। जब हम अपने आप से मित्रता कर लेंगे तो प्रभु से मित्रता और भी सरल हो जायेगी। क्योंकि वह तो हमारे अन्दर बैठा ही है, वह प्रतीक्षा कर रहा है कि कब हम अपने आप से मित्रता करना प्रारंभ करते हैं?

विद्वानों ने बताया है कि यदि हमें शान्ति चाहिए तो अपने अहं को त्यागना होगा। वास्तविकता यह है कि जिस ओर शान्ति मिलनी है, हम उस ओर जाना ही नहीं चाहते हैं। अशान्ति में बैठे–बैठे शान्ति की बातें करते हैं। जितना हम अहं को त्यागेंगे, उतनी शान्ति मिलेगी। अहं हो त्यागे बिना शान्ति मिल जाये, यह तो संभव नहीं है। जहां अहं है, वहां राग है, जहां राग है वहां द्वेष है, जहां द्वेष है वहां ममता है। इनके सब के बीच में हम बैठे हैं और मांगते हैं शान्ति। शान्ति कैसे मिलेगी? ऋषि मुनियों ने कहा है –आओ त्याग करो, शान्ति मिलेगी।

जब व्यक्ति रात्रि को गहरी नींद में सो रहा होता है, तब उसे न घर की चिन्ता रहती है, न दुकान की चिन्ता रहती है, न बच्चों की, न पत्नी की और न ही किसी और की याद आती है। इस समय उस को शान्ति मिलती है क्योंकि उस समय वह सभी बह्य कर्मों को त्याग कर देता है। परन्तु ज्यों ही नींद खुलती है फिर वही अशान्ति पुनः घेर लेती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक हम संसार को स्मरण करते रहेंगे, हम अशान्त रहेंगे और जब हमारा मन इन सांसारिक मोह, ममताओं से सम्बंध विच्छेद कर लेगा तो हमें शान्ति मिलेगी। हम सोचते हैं यह तेरा है, यह मेरा है, यही तो दुःख की जड़ है। इसके विपरीत जिसके जीवन से यह मेरा, तेरा निकल गया, शान्ति अपने आप मिल जायेगी। व्यक्ति चलता है दुःख के मार्ग पर परन्तु चाहता है, मुझे शान्ति मिले। यही एक कारण है हमारे दुःख का। अहंता, ममता जितनी अधिक होगी उतनी ही अशान्ति अधिक होगी और अहंता, ममता का जहां त्याग किया वहीं तत्काल शान्ति मिलेगी। सीधी और सरल बात है कि व्यवहार में कह दो कि यह जमीन, भवन, स्त्री, पुरुष, परिवार हमारे हैं, परन्तु अन्दर से इनसे ममता और आसक्ति न रखो इसे एक दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं–

एक नगर में एक राजा के महल के पास एक साधु ने धर्म चर्चा करनी प्रारंभ की। नगर के सभी लोग वहां धर्म चर्चा सुनने आते थे। इस धर्म चर्चा का समाचार राजा तक पहुंचा। राजा ने सोचा कि उस साधु को अपने महल में लाया जाये उसे महल की शान–शौकत उसे दिखाई जाये। राजा साधु के पास पहुंचा और प्रार्थना की– महाराज! हमारे महल में आने का कष्ट करे। हमने बहुत ही उत्तम महल बनाया है। देश विदेश के कारीगरों ने अपनी कला से इसे सुसज्जित किया है। दुनिया के अनमोल पत्थर आदि से इसकी सज्जा की है। कृपाय उस महल में चलिए। साधु ने विचार किया कि राजा को अपने महल का बहुत 'अहम्' हो गया है। इस के इस 'अहम्' को समाप्त करने के लिए उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। साधु बाबा को राजा ने पूरा महल दिखाया। महल की सारी सुन्दरता का वर्णन करते–करते अपने आप को राजा आनन्दित महसूस कर रहा था। परन्तु साधु उसकी इस मूर्खता पर मन्द–मन्द मुस्कुरा रहा था। अन्ततः एक ऐसा स्थान दिखाया जहां कुछ चित्र लगे हुए थे। उन्हें भी साधु ने देखा। अब राजा ने पूरा महल दिखाकर साधु से पूछा– महाराज, हमारा महल कैसा लगा? साधु ने उत्तर दिया– राजन्! बहुत सुन्दर धर्मशाला बनाई है। यह सुनते ही राजा सकपका गया। राजा साधु से ऐसे उत्तर की अपेक्षा नहीं रखता था। राजा ने साधु से कहा– क्या कारण है कि आप इतने सुन्दर महल को एक सराय या धर्मशाला कह रहे हैं? साधु बाबा ने उन चित्रों की ओर संकेत करते हुए पूछा– ये चित्र किस–किस के हैं? राजा ने कहा– पहला चित्र मेरे परदादा जी का, दूसरा मेरे दादाजी का, तीसरा पिताजी का है और चौथा स्थान खाली है। साधु बाबा ने कहा यहां पहले आप के परदादा जी, फिर आपके दादा जी, फिर पिताजी, अब आप और फिर आपके बच्चे रहेंगे। आप सदा तो यहां नहीं रहोगे। आप की मृत्यु के बाद चौथे खाली स्थान पर आप का चित्र लग जायेगा। राजन! धर्मशाला या सराय भी ऐसी ही होती है। वहां भी लोग कुछ दिन रहते हैं, फिर छोड़कर चल देते हैं। इसी प्रकार आपके परदादा, दादा, पिता इस सराय में रहकर चले गये। आपके जाने के पश्चात् आपके के पुत्र, पौत्र रहेंगे। यह सराय नहीं तो और क्या है? राजा का अहं टूट गया। उसे वास्तविकता का ज्ञान हो गया।

व्यक्ति, वस्तु, पदार्थ हमें जो मिलते हैं, उस का हम सदुपयोग करें, अधिकार न जमायें। इस बात का पक्का विचार कर लें कि यह शरीर, संसार की सब वस्तुएं हमें कुछ समय के लिए प्रयोग के लिए मिली हैं। जिस प्रकार एक व्यक्ति गाड़ी में जहां तक की टिकट लेता है, वहां तक यात्रा करके गाड़ी छोड़ देता है। उसका उपयोग किया और संसार की सभी वस्तुओं में मोह नहीं करता। इसी प्रकार हमें भी वस्तुओं में मोह करने की बजाय उस का सदुपयोग करने तक ही सीमित रहना होगा। यदि दुरुपयोग करेंगे तो दण्ड भोगना पड़ेगा। इन पर अपना अधिकार जमाना यही बन्धन है।

एक बात और यह है कि हम शरीर तथा वस्तुओं से सुख लेना चाहते हैं। परन्तु मानव शरीर व सामग्री सुख तथा भोग के लिए ही नहीं है, यह तो दूसरों को सुख देने के लिए तथा दूसरों की सेवा के लिए मिली है। यदि हम सुख की कामना छोड़ देंगे तो स्वतः ही महान् आनन्द और महती शान्ति की प्राप्ति होगी। अतः शान्ति का उपाय यही है कि व्यक्ति में 'मैं' नहीं हूं। शरीर संसार मेरे नहीं हैं। मुझे दूसरों से सुख लेना नहीं है अपितु दूसरों को सुख देना है। जब यह भावना आ जायेगी तो आत्मसाक्षात्कार हो जायेगा। परन्तु इसके लिए अपने 'अहम्' को त्यागना होगा। इसी सन्देश के साथ मैं अपनी लेखनी का यहां विराम देता हूं। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि हम अपने अन्दर से 'अहम्' भाव को दूर कर सकें।

4/44 शिवाजी नगर,
गुड़गाँव, हरियाणा,
चलभाष– 09911197073

आजकल टी.वी. चैनलों पर धर्म को सही रूप में वर्णन नहीं किया जाता

● श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

धर्म का प्रचार इस प्रकार किया जा रहा है:– लक्ष्मी की पूजा कैसे की जायेगी ताकि धन की वर्षा हो, शनि महराज कैसे प्रसन्न होंगे जिससे घर में शान्ति बनी रहे, शिव जी की पूजा करने से कितने प्रकार का लाभ हो सकता है, हनुमान जी की पूजा कैसे की जायेगी, श्री गणेश, काली और दुर्गा की पूजा किस प्रकार किन पद्धतियों से की जायेगी, विद्या की प्राप्ति के लिये सरस्वती की पूजा कैसे की जायेगी? इन सबके विधि–विधान बताने के लिए 'टी.वी.' चैनलों पर पण्डित जी आते हैं और वेद विरुद्ध किन–किन पदार्थों से, किन–किन श्लोकों से किन–किन देवताओं की प्रतिमाओं की पूजा कैसे की जायेगी सब अलग–अलग बताते हैं।

किन्तु यह सब धर्म का यथार्थ रूप नहीं है। वैदिक शास्त्र के अनुसार धर्म उसे कहते हैं जो यम–नियमों के साथ धर्म के लक्षणों का पालन करते हैं एवं वैदिक मंत्रों से यज्ञ तथा सन्ध्योपासना करते हैं। अतः इन्हीं के प्रयोग से मनुष्य स्वयं को सदाचारी एवं अपने परिवार में सुख शान्ति ला सकता है।

पांच यम : – ''**तत्राहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः** (योगसाधन)

1. अहिंसा – मन, वचन, कर्म से किसी को दुःख न देना।
2. सत्य – मन, वचन, कर्म से सत्य का व्यवहार करना।
3. अस्तेय – मन, वचन, कर्म से चोरी का त्याग करना।
4. ब्रह्मचर्य – अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम करना।
5. अपरिग्रह – न्यायपूर्वक भोग, लोलुपता व अन्याय से किसी वस्तु की इच्छा न करना।

पांच नियम – 'शौच सन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः। (योगसा.)

1. शौच – शरीर, मन, आत्मा तथा बुद्धि शुद्ध रखना।
2. सन्तोष – धर्म और परिश्रम से प्राप्ति में प्रसन्न रहना।
3. तप – धर्माचरण (योगाभ्यास) में संकट भी सहन करना, नित्य कर्मों को नियमपूर्वक पालन करना।
4. स्वाध्याय – वेद, उपनिषदादि आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन व मनन करना।
5. ईश्वर प्रणिधान – ईश्वर की भक्ति करना।

धर्म के लक्षण –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह/धीर्विद्या सत्यम क्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्। (मनु. 06,92) अर्थात्–धैर्य, सहनशीलता, मन को वश में रखना, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों पर नियत्रण रखना, बुद्धि का प्रयोग करना, यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने में समय लगाना, सत्य बोलना, क्रोध न करना। ये धर्म के दश लक्षण हैं।

अपने जन्मदाता माता–पिता के जीवित रहते उनका श्राद्ध अर्थात् श्रद्धा से मान–सम्मान, और पहले (गुरु के समान) उन्हें भोजन खिलाकर सबको भोजन करना चाहिये और बहुओं को चाहिये कि अपने सास–ससुर के आज्ञा का पालन करें, यह सब धर्म है। अतः जितने अच्छे कर्म हैं जिनसे सबका भला हो वह धर्म है'। मानव सेवा, तथा गिरे हुए को उठाकर उसे अस्पताल पहुँचाना यह सब धर्म है।

धर्म का प्रचार इस प्रकार किया जा रहा है:– लक्ष्मी की पूजा कैसे की जायेगी ताकि धन की वर्षा हो, शनि महराज कैसे प्रसन्न होंगे जिससे घर में शान्ति बनी रहे, शिव जी की पूजा करने से कितने प्रकार का लाभ हो सकता है, हनुमान जी की पूजा कैसे की जायेगी, श्री गणेश, काली और दुर्गा की पूजा किस प्रकार किन पद्धतियों से की जायेगी, विद्या की प्राप्ति के लिये सरस्वती की पूजा कैसे की जायेगी? इन सबके विधि–विधान बताने के लिए 'टी.वी.' चैनलों पर पण्डित जी आते हैं और वेद विरुद्ध किन–किन पदार्थों से, किन–किन श्लोकों से किन–किन देवताओं की प्रतिमाओं की पूजा कैसे की जायेगी सब अलग–अलग बताते हैं।

तप किस कहते हैं '**कार्येन्द्रियसिद्धर शुद्धि क्षमा तपसः।।** (योग, 21, 83) उपनिषद् में कहा गया है:– '**एतद्व परमं तपो यद्व्या हितस्तप्ये। एतद्व परमं तपो यं प्रेतमरण्यं हरन्ति! एतद्व परमं तपो यं प्रेत मग्नावभ्यादधति।** (वृहदरण्यकोपनिषद् –5–11–1) अर्थात् – रोग के कष्टों का सहना, प्रेत (मरे हुए की लाश) को श्मशान में लेजाना, चिता में अग्नि लगाना, ये महान तप हैं। योगदर्शन और उपनिषद् के इन वाक्यों से स्पष्ट है कि तप, कठोरताओं के सहने, अशुद्धियों को दूर करके शरीर और इन्द्रियों पर अधिकार रखने तथा कठिन समस्याओं पर जनता की सेवा करने का नाम .... है।

तप का यह अर्थ नहीं कि शरीर को भौतिक अग्नि में जलाते रहें किन्तु तप का सही अर्थ प्रत्येक दशा को सहन करना है। स्वयं तपकर दूसरो को प्रकाशित करना, प्राणायाम करना और अपने दृढ़ एवं सत्य संकल्प को न तोड़ना भी तप है।

ईश्वर प्रणिधान – अपने सभी कर्मों को ईश्वरार्पण कर देना, इसका प्रधान उद्देश्य है। इससे मनुष्य की आत्मा को शान्ति मिलती है। तात्पर्य यह कि अपनी सारी ममता तथा चिन्ताओं को ईश्वरार्पण कर उनसे अपने में निष्पाप और शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करे।

घर–गृहस्थी में रहते हुए भी योगाभ्यास किया जा सकता है। उदाहरण के लिये 19 वीं सदी में – 'रामकृष्ण परमहंस से एक भक्त ने पूछा – 'महाराज! भगवद् ध्यान और गृहस्थ कर्म दोनों एक साथ कैसे हो सकता है? मुझे तो असंभव सा लगता है।'

रामकृष्ण परमहंस ने कहा– 'गाँव की स्त्रियों को दूध बेचने के लिए शहर जाते देखा है? उनके सिर पर एक के ऊपर एक–एक, दो–दो, तीन–तीन दूध के भरे मटके होते हैं। रास्ते में वे आपस में घर–गृहस्थी की बातें करती जाती हैं, लेकिन उनका ध्यान भटकों की ओर लगा रहता है कि कहीं मटके गिर न जायें। ठीक इसी प्रकार अपना गार्हस्थ कर्त्तव्य निभाते जावो और प्रभु स्मरण भी करो।'

बंगला इतिहास में 'रामकृष्ण' के मत के बारे में लिखा है कि – वे भक्ति, त्याग और एकेश्वर के प्रति एकाग्रता का प्रचार करते थे, वे धर्म के सम्बन्ध में भेदाभेद दूर करके 'जितने मत – उतने पथ' पर ईश्वर एक ही है, जिसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है।

कहा जाता है कि रामकृष्ण परमहंस काली के उपासक थे, किन्तु वे उस देवी को ईश्वर के समान मानते थे। आजकल के लोग जबतक काली स्थान में नहीं जाते तब तक पूजापाठ नहीं करते। काली के भक्त भी बिना मन्दिर के एकान्त स्थान में जाकर उस देवी का ध्यान नहीं करते। किन्तु रामकृष्ण परमहंस जंगल में भी जाकर माँ का ध्यान किया करते थे।

जब उनके भगिना ने देखा कि मामा तो मंदिर में नहीं हैं, तब खोज करते करते जंगल की ओर चले गये, देखते हैं कि रामकृष्ण माँ का ध्यान कर रहे हैं। ध्यान भंग होने पर जब भगिना ने पूछा, मामा! आप मंदिर छोड़कर जंगल में ध्यान क्यों कर रहे हैं? उत्तर में रामकृष्ण ने हंसकर कहा '**ओरे माँ की आमार मंदिरेई थाके, माँ आमार सब जायगातेई आछे।' 'या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रुपेण संस्थिता, सर्वव्यापि जगत जननी।'** तात्पर्य यह कि काली तो एक माध्यम था, किन्तु उनके धारणा और ध्यान में ईश्वर के प्रति एकाग्रता 'वैदिक' थी।

पुराणों के कर्त्ताओं द्वारा रचे गये के अनुसार 'रक्तबीज को मारने के लिए महाशक्ति के रूप में काली प्रकट हुई थी। अब उसी शक्ति रूप को रक्षक आदि के नाम से उनकी मूर्ति बनाकर लोग पूजते रहते हैं।

इसी प्रकार देवी पुराण के अनुसार महिसासुर का वध करने के लिए देवी दुर्गा महाशक्ति के रूप में प्रकट हुई थी, इसलिये उनके भक्त लोग 'देवी दुर्गा दुर्गति नाशिनी' की प्रतिमा बनाकर पूजा पाठ करते हैं।

मु. पो. मुरारई
जिला – बीरभूम
(प॰ बगाल) 731219,
मो॰ 8158078011

आर्य वधु चाहिए

आस्ट्रेलिया में कार्यरत इंजीनियर, आयु 26 वर्ष, कद 6 फुट, एम. टेक, एम.बी.ए. भारत में बसने के इच्छुक एक आर्य–परिवार के सुन्दर युवक के लिए आर्य–परिवार की सुन्दर, सुशिक्षित, संस्कारी कन्या की आवश्यकता है।

संपर्क करें : 9992000444

वेद ही बचा सकता है विश्व को!

● पं. आर्य प्रहलाद गिरि

यह ऐतिहासिक कथा महाभारत की है। तब विस्तृत आर्यावर्त की राजधानी अयोध्या थी और वहाँ के वेदव्रती चक्रवर्ती सम्राट थे–मांधाता। इन्हीं के सुख्यात पुत्र अंबरीष के विख्यात बहनोई थे – ऋषिवर सौभरि। तब वेदकालीन वैज्ञानिकों को ही विषयानुसार ऋषि, महर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, योगर्षि, वेदर्षि आदि कहा जाता था और विश्व–मानवोत्थान–कल्याण हेतु किये जाने वाले भूगर्भ से लेकर अंतरिक्ष तक के बड़े–बड़े अभियानों को ही यज्ञ–महायज्ञ कहा जाता था।

तभी इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) के गुरुकुल से वनस्पति–विज्ञानी सौभरि के आश्रम (प्रयोगशाला) में आये एक शोधार्थी – ब्रह्मचारी ने अपना एक नव–निर्मित यंत्र को दिखाते हुए कहा – 'हे विज्ञानवेत्ता ऋषिवर! आज कल धरती पर कहीं–कहीं दुष्ट निकम्मे डकैतों की संख्या बढ़ने लगी है, ये सरल–शांत परिश्रमी सज्जनों के समृद्ध ग्रामों को लूट–पाट कर वहाँ की सुख–शांति भंग कर देते हैं। इस प्रक्षेपास्त्र के एक ही प्रहार से जंगलों में भाग–भाग कर छुप जाने वाले सारे अत्याचारी–गण वन्य–वृक्षों सहित जल कर राख हो जायेंगे। आज–कल के लिये अति उपयोगी इस यंत्राविष्कार पर आपका आशीर्वाद (स्वीकृति) चाहता हूँ, ताकि सम्राट मांधाता को यह भेंट कर सकूँ।' सौभरि ने सस्नेह समझाते हुए कहा–'वत्स, वैदिक–विज्ञान हमें उन हर आविष्कारों–प्रयोगों से रोकता है जो चर–अचर निर्दोष जीवों–पर्यावरण व भविष्य के लिये भी दुखद (कुप्रभावी) हो। क्योंकि छोटी–छोटी मानवीय बाधाओं को दूर करने के लिये प्रकृति और पर्यावरण को कुपित (भयंकर दूषित) कर देना जितना आसान है, उतना ही कठिन है उसे पुनः शांत–संतुष्ट (निर्मल) करना।

आजकल भरद्वाज ऋषि के आश्रमों में भी कोई 'पुष्पक–यान' बनाने की तैयारी चल रही है, किन्तु इससे कहीं किसी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, बस इसी में यह वेदानुसंधान अटकते जा रहा है। मेरा अनुमान है कि राजर्षि मनु के पुत्र और विश्वकर्मा के दामाद–प्रियव्रत द्वारा बनाये गये कृत्रिम चन्द्रमा (जो सूर्य के विपरीत आकाश में सात दिनों तक चक्कर लगाते हुए रात में भी धरती को प्रकाशित करते रहा था) जैसा सौर–उर्जा से संचालित और सिर्फ योगियों (भोगियों के लिये नहीं) के लिये बने; तभी यह संभव हो सकता है।

हम वेदानुयायी आर्यजन वेद (यजु. 36.17) के इस मंत्र को प्रतिदिन द्यौः शांति, अंतरिक्ष शांति, पृथ्वी शांति, वनस्पति शांति, जल शांति, सर्वदेव शांति की कामना में पर्यावरण देव को ही तो सुखी–स्वस्थ–स्वच्छ रखने हेतु पवित्राग्नि में सूर्य के सामने आहुतियां दिया करते हैं। अतः वत्स, तुम ऐसे पर्यावरणारि यंत्र की जगह पर कोई अन्य निरापद आविष्कारों से ही विश्व–देवों का सम्मान करो।' तब वह ब्रह्मचारी उस यंत्र को वहीं नष्ट कर के अपने गुरुकुल में लौट गया।

हमारे प्रबुद्ध पाठको! ये चेतावनी उस जमाने में दी गयी थी, जब प्रचुर उपजाऊ धरती में लगभग सर्वत्र हरियाली ही हरियाली थी, वन–पवन–जल–मेघ–नदी–तालाब–पशु–पंछी–जीव–जंतु और मनुष्यों के आचरण सभी कुछ निर्मल–संतुलित थे। आज तो हम पर्यावरण–प्रदूषण के भयंकर कुप्रभावों की कुछ भी चिंता किये बगैर अंधाधुंध आविष्कारों की होड़ में इतने घिर गये हैं कि दोनों ध्रुवों के विशाल हिम खंडों को निरंतर पिघलते जाना, नगरों–नदियों में बाढ़ें आना, खेतों–मैदानों में सुखाड़, भूगर्भ से भूकंपें उठना, समुद्र तटों पे सुनामी, आकाश से वज्रपातें, छिन्न–भिन्न हो रहे ओजोन–परतों से त्वचा कैंसर–वाहक सूर्य का धूप, वायुमंडल में परमाणु अस्त्रों के विस्फोटों से लेकर मोबाइल टावरों तक से निकल रही रेडियो–धर्मिता से पंक्षियों की लुप्तता आज सामान्य बात हो गयी हैं।

सन् 1860 से 1960 के सौ वर्षों में धरती के वातावरण में 14% कार्बन डाइ आक्साइड बढ़े थे, आगामी 2060 तक इसे 40–45% तक बढ़ जाना अचरज की बात नहीं होगी। क्योंकि तब धरती की जनसंख्या भी दस अरब हो जायेगी। भारत के केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार 241 नगरों के 90% जल दूषित हो गये हैं। दजला–फरात नदियों का सभ्यता वाला इराक (मेसोपोटामिया) के 80% भूमि आज बंजर हो गये हैं। धरती की ऐसी दुरावस्था से बचने के लिये वैदिक–परंपराओं का ही समर्थन करते हुए सुकरात के शिष्य और अरस्तू के गुरु– प्लेटो (मिश्र के दार्शनिक–427 ई.पू.) भी पर्यावरण की दुर्बलता पर दुखित होकर कहे थे– 'उचित आवश्यकता से कुछ भी अधिक प्रकृति का दोहन या छेड़छाड़ करने पर धरती पीली (सूखी, बंजर), आकाश लाल और भूगर्भ व्याकुल हो उठता ही है।, इसीलिये आधुनिकता के चकाचौंध में फतिंगों–सी मिटती हुई मानवता को देखकर महर्षि दयानंद ने दुनियाँ वालों को डंके की चोट पे कहा था–'यदि जीवित रहना चाहते हो तो, पुनः वेद (प्रकृति) की ओर चलो।'

सचमुच आज यदि हम इन विश्व–विभूतियों की चेतावनियों को नजरअंदाज करते हुए यानी देश, समाज, विश्व की चिंता न करके सिर्फ अपने--अपने क्षणिक सुख–सुविधा व स्वार्थों में पर्यावरण को इसी तरह प्रताड़ित करते रहे यानी अब पर्यावरण को हर तरह से बचाना हैं; हम लोग मुख्य--धर्म (प्रमुख कर्तव्य) न समझे, तो इस धरती–सभ्यता को भी मंगल–ग्रह–सा वीरान होते देर न लगेगी!

इस 'अनमोल–पर्यावरण को बचाना ही विश्व–मानवता का मुख्य धर्म' भी तभी होगा, जब हम बाइबल–कुरान–पुराण आदि मजहबी–सांप्रदायिक दुराग्रहों से ऊपर उठकर सार्वभौमिक–सार्वकालिक सर्वहितैषी–वेद की वैज्ञानिक जीवन चर्या को स्वीकारने लगेंगे। आज विपन्न हिंदू भी वेदानुयायी होने के कारण ही पवित्र अग्नि में घी, शक्कर, अन्न, औषध, चंदनादि की आहुति देते रहता है, जिसकी सुगंधित हवायें पृथ्वी से लेकर ओजोन तक को स्वच्छ–स्वस्थ करती हैं। वैदिक–संस्कार वश ही प्रकृति–प्रेमी होने के नाते ये तुलसी, पीपल, नीम, बेल, आम्रादि वृक्षों में जल देने तथा नदी–तालाबों को निर्मल रखने में विश्वास करते हैं। यदि भारत की तरह अरब और यूरोप के धर्मों में भी पर्यावरण का इतना ही ध्यान रखा जाता तो ये लोग मांसाहारी और भौतिकतावादी (कृत्रिम जीवी) न हुए होते। पर्यावरण–द्रोही ये कुवृत्तियाँ आज हम वैदिकों (भारतीयों) के आंगन में भी घुस चुकी हैं। अतः पर्यावरण बचाने हेतु कमाबेश हम सभी को संभलने–सुधरने की अब सख्त जरूरत है। यदि हम बिजली, पानी, ईंधन का ज्यादा खर्च करते हैं; धूल, धुआँ, कोलाहल, प्लास्टिक, पेड़ों की कटाई, पटाखे–आतिशबाजी करते हैं और हवन भी करते हैं, तो पर्यावरण–देव ज्यादा प्रसन्न नहीं होंगे।

वेद में हर कर्म को यज्ञ समझ कर सिर्फ अपने लिये ही नहीं, सबके लिये करते रहने की प्रेरणा दी गयी है। इसीलिये हर यज्ञाहुति पर हम 'स्वाहा' या 'इदं न मम' कहते हैं, इन दोनों पर्यायवाची शब्दों का यही अर्थ है कि 'हे ईश्वर, इस पुण्यकर्म का लाभ मुझे नहीं, पूरे विश्व को मिले।' (जब पूरे विश्व के लोग सुखी होंगे तो उसी में शामिल मैं स्वतः सुखी हो जाऊंगा, इतना उत्तम चिंतन रहा है वैदिकों का)

कृण्वंतो विश्वं आर्यम् (पूरी दुनियाँ को सभ्य बनाओ); वसुधैव कुटुंबकम् (सारे धरतीवासी हमारे ही परिवार हैं); मनुर्भव (सच्चे अर्थों में इंसान बनो) के वेदोद्दात्त भावों को जो मानेगा वो अपनी सुख–सुविधा के लिए भी पर्यावरण का दोहन–शोषण कदापि नहीं करना चाहेगा।

यजुर्वेद (12.12) में लिखा है– 'हे प्रभु, पृथ्वी (पर्यावरण) के प्रति हम सदा निरपराधी बने रहें।' हे ईश्वर! हमारे कर्म ऐसे हों कि दिव्य गुणों से युक्त, पीने योग्य जल की वर्षा हम सबके लिये सर्वत्र शांतिदायक हो– (36.12)

ऋग्वेद (10.97.1) में देखिये– 'मनुष्योत्पत्ति के पहले ही जीवन यापन हेतु ईश्वर ने पृथ्वी पर जल–फल–फूल–औषध–अन्नादि तैयार कर दिये थे, ईश्वरत्व के प्रतीक इन वनस्पतियों को मत सताओ (मिटाओ)।' 'ये वनस्पतियाँ हमें आनन्द और आरोग्य देती हैं (अथर्व.–4.15.16); स्वासों से हृदय में जाने वाली हवायें हम सबके लिये जीवनदायी और रोग निवारक हों (अथर्व.–4.13.3)। सु वनस्पते जीवानां लोकं उन्नय–प्रफुल्लित पौधे लोक–जीवन में सदा कल्याण–उत्थान कारी रहें–(अथर्व.–2.9.1)।

वेद में ऐसे अनेक विचार (मंत्र) हैं जो हमें पर्यावरण–प्रेमी बनाये रखते हैं। आज बेहद बढ़ी हुई जनसंख्या भी पर्यावरण को कुपित कर रही है। यहाँ के पर्यावरणी–प्रकोपों से बचने के लिये पृथ्वी के वैज्ञानिक टाइटन (शनि का उपग्रह) आदि पर बसने को सोच रहे हैं, किन्तु इन्हें धरती से बाहर कहीं भी गुजारा तभी होगा जब उनका धरातल सुखी–समृद्ध रहेगा। वर्ना, पाकिस्तान में बिहारी–मुसलमानों की तरह इन भगोड़े वैज्ञानिकों (यह कहने के लिये क्षमा चाहता हूँ–लेखक) को चैन से एलियन वहाँ भी रहने नहीं देंगे। प्रेमचन्द लिखे हैं–'चिड़िया कितना भी ऊँचा आकाश में मस्ती से उड़ती रहे, दाना चुगने के लिये उसे धरती पर ही आना होता है।' अतः आधुनिक विज्ञान कितने भी प्रकाशवर्ष की गति से दूसरी दुनियाँ को भी क्यों न छू ले, धरती का कराहता पर्यावरण उनके सारे अरमानों पर पानी फेर देगा।

'ईश्वर से वही जुड़ सकता है जो ईश्वर–पुत्रों से जुड़ चुका हो, यानों जो प्रभुपुत्रों से घृणा–द्वेष न करता हो।'– योगदर्शन का ऐसा वैदिक संदेश देने वाला–योग–प्राणायाम को जिस तरह अपना कर सारी दुनिया आज (21 जून अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस पर) मृत्यु से अमरता की ओर लौटने लगी है, उसी तरह 5 जून को आयुर्वेद–पर्यावरण के दिन से हम दो हमारे एक–का जनसंख्या नियंत्रण; हर साल प्रति व्यक्ति अवश्य वृक्षारोपण; तेल, पेट्रोल, ईंधन, गाड़ी, ए.सी., फ्रिज, बिजली, यूरिया, केमिकल, पोलीथिन आदि को नियंत्रित करके सायकिल–सौर ऊर्जा का अधिकाधिक प्रचलन, जलों का संरक्षण और संशोधन, धूम्रपान–आतिशबाजी निषेध आदि का सक्रिय–संकल्प लिया जाये तो आर्यों के पर्यावरणी देवता लोग पुनः शांत–संतुष्ट हो सकते हैं। तभी हमारी चिंतित–सी रहने वाली प्यारी धरती माता के मुखड़े पे मुस्कानें चहकेंगी और हम सभी धरती वासियों का सुखी जीवन भी चिंता मुक्त बना रह सकेगा।

(द्रष्टव्य–देवता, परमात्मा और भगवान में अन्तर होता है। परमोपास्य निराकार परमात्मा सिर्फ एक है जबकि देवता और भगवान अनेक होते हैं। जिसमें भी दिव्यता हो या जो संसार को सदा देते रहा हो, देती रही हों उन्हें ही हम कृतज्ञता वश देव या देवी कह देते हैं, जैसे पवन देव, अग्नि देव, वरुण देव, धरती देवी, गुरु देव, सूर्य देव, गंगा माता, गऊ माता, भारत माता, वृक्ष देव, अन्नपूर्णा देवी, कृषि देवी आदि। जो 'भग' अर्थात् ऐश्वर्य 'वान' हो उसे हम भग वान या भग वती कहते हैं, ये भी कई और कोई हो सकते हैं– भगवान राम, भगवान कृष्ण, भगवान बुद्ध, भगवती सीता, भगवती दुर्गा, भगवती सरस्वती आदि। चूंकि सरस्वती, सूर्य, अग्नि, वरुण, शिव, शंकर, विष्णु, लक्ष्मी आदि ये वैदिक नाम उसी एक निराकार ईश्वर के भी हैं इसी भ्रम में अज्ञानी लोग इन छोटी–छोटी देव देवियों को भी परमात्मा ही मान बैठते हैं और परमात्मा समझ कर पूजा करने का ईश्वरीय–पाप भी करने लग जाते हैं। हिन्दुओं के तैंतीस कोटि देवता का अर्थ तैंतीस करोड़ नहीं, बल्कि तैंतीस किस्म (वर्ग) के देवता होता है)।

निंगा, आसनसोल (प. बं.)
713370

श्री कृष्ण के अवतरण की यथार्थता

● पण्डित वेदप्रकाश शास्त्री

आर्य मर्यादा 28 जून, 2015 के अंक में पृष्ठ 5 पर लेख ''श्रीकृष्ण का पुरुषार्थ''– लेखक–स्वर्गीय शान्ति स्वरूप गुप्त और संकलनकर्ता–मृदुला अग्रवाल 19–C, सरत बोस रोड, कोलकाता, प्रकाशित हुआ है जिसमें श्रीकृष्ण को अवतरित अर्थात् अवतार लेने के रूप में प्रदर्शित किया गया है जो अवैदिक है। लेखक लिखता है–

(क) ''भगवान् कृष्ण ने अपने अवतरित होने के तीन हेतु बताए हैं–

1. परित्राणाय साधूनाम् 2.विनाशाय च दुष्कृताम् 3. धर्मसंस्थापनार्थाय।

(ख)'' ऐसे ही समय में भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित हुए।''

लेखक के कथन से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण अवतरित होते अर्थात् अवतार लेते हैं। परन्तु विचार करने पर ज्ञात होता है कि कोई भी जीव स्वयं अवतरित नहीं हो सकता। जन्म–मरण ईश्वर के अधीन है। ईश्वर जीव के गुण, कर्मानुसार ही जन्म प्रदान करता है।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।

भला इस उक्ति को कैसे अस्वीकार किया जा सकता है? फिर श्रीकृष्ण अपनी इच्छानुसार कैसे अवतरित हो सकते हैं? यह पूर्णरूपेण असम्भव है। यदि जन्म लेना अपने ही हाथ में हो तो कोई भी निर्धन, विकलांक, अनपढ़, भिक्षुक, निःसहाय, चक्षुहीन आदि क्यों बने? सभी धनाढ्य, विद्वान्, राजा, महाराजा आदि बन जाएं, परन्तु ऐसा है नहीं। ''कर्म गति टारे नाहि टरे।'' यह जीव के वश में नहीं। अच्छे–बुरे कर्म करना जीव के अधीन है– स्वतन्त्रः कर्ता। कर्म करने में जीव स्वतंत्र है और फल भोगने में परतन्त्र। ईश्वर न्यायाधीश है। वही जन्म देता है।

लेखक ने श्रीकृष्ण के अवतरित होने के जो तीन हेतु बताएं हैं इस पर मेरी पुस्तक ''यदा यदा हि धर्मस्य– सत्य की कसौटी पर'' प्रकाशक–सत्य प्रकाशन, वृन्दावन रोड, मथुरा, उ. प्र. अवश्य पढ़नी चाहिए।

वस्तुतः आर्य समाज श्रीकृष्ण को अवतार रूप में स्वीकार नहीं करता। जैसा कि लेखक ने अवतार के हेतुओं का उल्लेख किया है। इस विषय में महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में पृ. 157 पर लिखते हैं–

प्रश्न – ईश्वर अवतार लेता है, वा नहीं?

उत्तर – नहीं, क्योंकि–

'अज एकपात्।।' यजु. 34/53

'स पर्यगाच्छुक्रमकायम्।।' यजु. 40/8

इत्यादि वचनों से परमेश्वर न जन्म लेता है और न कभी शरीर वाला होता है।

प्रश्न – यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। गीता 4/7

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जब जब धर्म का लोप होता है तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ।

उत्तर – यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग–युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूं तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि 'परोपकाराय सतां विभूतयः' परोपकार के लिए सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है, तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।''

लेखक के तीनों हेतुओं का उत्तर भी आगे मिल जायेगा–

प्रश्न – ''जो ऐसा है तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार होते हैं, और इनको अवतार क्यों मानते हैं?''

उत्तर – वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहकाने और अपने आप अविद्वान् होने से भ्रमजाल में फंसते हैं और मानते हैं।

प्रश्न – जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस–रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके?

उत्तर – प्रथम तो जो जन्मा है, वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार–शरीर धारण किए बिना जगत्–की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है, उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस–रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। इस अनन्त गुण–कर्म–स्वभाव युक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव को मारने के लिए जन्म–मरणयुक्त कहना महामूर्खता का काम है।

और जो कोई कहे कि भक्तों के उद्धार के लिए जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं, क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल चलते हैं, उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् को बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से पुत्रोत्पत्ति, कंस–रावणादि का वध और गोवर्धन आदि उठाना बड़े कर्म हैं? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो 'न भूतो न भविष्यत' ईश्वर सदृश न कोई हुआ, न है और न होगा।''

स. प्र. समु. 7, पृ. 157

योगिराज श्रीकृष्ण के उज्जवल चरित्र के सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं –

''देखो! श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव, चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मरण–पर्यन्त बुरा काम किया हो, ऐसा नहीं लिखा। और भागवत में दूध, दही, मक्खन की चोरी, कुब्जादासी से समागम, पर–स्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण में लगाए हैं। इसको पढ़–पढ़ा, सुन–सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्ण की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों होती?''

स. प्र. समु. 11, पृ. 279

लेखक ने श्रीकृष्ण के अवतरित होने के जो तीन हेतु बताए हैं, उसकी विस्तृत सत्यता जानने के लिए – मान्या मृदुला अग्रवाल को डॉ. श्री राम द्वारा लिखित पुस्तक ''पुराणों के कृष्ण'' अवश्य पढ़नी चाहिए।

''गौ को वेदों में भगवान् का विराट् रूप ही बताया गया है और जीवन सर्वस्व लगाकर उनका पालन करना श्रीकृष्ण चरित्र का बहुत बड़ा पहलू है। वेद ने गौ को कितने उच्च आसन पर आसीन किया है, यह इसी बात से सिद्ध हो जाता है कि गौ के शरीर के आधार पर ही उन्होंने परमात्मा के विराट् रूप का वर्णन किया है।''

इस वर्णन में अथर्ववेद के आठवें काण्ड के सातवें सूक्त में कहा है –

प्रजापतिश्च परमेष्ठी......।।

प्रस्तुत उद्धरण का पता ही अशुद्ध दिया गया है। मूल लेखक और संकलनकर्ता माननीया मृदुला अग्रवाल में से सम्भवतः किसी ने भी मूलग्रन्थ अथर्ववेद को पढ़ने का कष्ट नहीं किया कि दिए गए पते पर ये मन्त्र उपलब्ध भी हैं या नहीं? मैंने उपर्युक्त पते पर अथर्ववेद–भाष्यकार पण्डित क्षेमकरण दास त्रिवेदी प्रकाशक – सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, रामलीला मैदान, नई दिल्ली–1, सम्यक् प्रकारेण देखा परन्तु ये मन्त्र कहीं नहीं मिले। मैं निराश हो चला था। फिर भी मन में यह विचार बार–बार खौझता रहा–मन्त्र नहीं मिले। आसपास सूक्तों को भी देखा, पर निराशा ही हाथ लगी।

अचानक ही गौ को वेदों में भगवान् के विराट रूप की बात पुनः ध्यान में आ गई जो पौराणिक कल्पना पर आधारित है। क्योंकि कृष्ण ने अपने विराट् रूप को दिखाया था। अतः पहले गीता देखी। उसमें कुछ नहीं मिला।

मेरे पास गीता प्रेस गोरखपुर का जनवरी, 1995 ई. 'कल्याण' को ''गोसेवा अंक'' था। मैंने सोचा, शायद इसमें ही सम्बन्धित जानकारी मिल जाय, क्योंकि गौ में भगवान् के विराट् रूप को देखना पौराणिक उद्भावना है, वैदिक नहीं। मेहनत रंग लाई। प्रस्तुत अंक में पृष्ठ 8 पर **''गौ का विश्व–रूप''** लेख था। जिसमें सम्भवतः सम्पादक ने विभिन्न ग्रन्थों से गौ सम्बन्धी उद्धरण संकलित किए हैं, क्योंकि ऊपर सम्पादक की टिप्पणी है। लेखक का नाम नहीं। इसमें सर्वप्रथम वेदों के उद्धरण ही हैं।

''वेदों में'' उपशीर्षक के अन्तर्गत–

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृंगे इन्द्रः।

अथर्ववेद काण्ड 9, सूक्त 7, मन्त्र 1–26 उद्धृत हैं। 'गोसेवा अंक' में बीच–बीच में सभी 26 मन्त्रों के अर्थ दिए गए हैं।

आर्य मर्यादा में मृदुला जी ने 1–16 तक मन्त्र दिए हैं और इसके बाद ''तस्या इन्द्रो वत्स'' संख्या 12, 13 का पता अनुल्लिखित है। आगे– **''सं वो गोष्ठेन सुषदा''** का पता–अथर्व. 3/14/1 है। तत्पश्चात् – **''अभ्रं पीवो मज्जा निघनम्** 14, 29, 20, 23, 25, 26 मंत्रों का उल्लेख– है परन्तु पता नदारद है।

वस्तुतः इन मंत्रों का सही पता है–

अथर्व. कां. 9, सू. 7, मन्त्र 18, 19–23, 25, 26 आगे–**संजग्माना अबिभ्युषीः** ...... अथर्व. 3/14/3 और – **मया गावो गोपतिना** .... अथर्व. 3/14/6 है।

संकलनकर्ता आदरणीया मृदुला जी के पते अशुद्ध हैं। मन्त्रों के संकलन का केवल–**प्रजापतिश्च ...... से देवजनाः** .... मन्त्र 16 तक का तारतम्य ठीक है। परन्तु अगले मन्त्रों में खिचड़ी पका दी है। बस, ''कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा'' को ही चरितार्थ किया है।

सम्भवतः यह अर्थ विराट् स्वरूप में गौ की कल्पना सायण अर्थ की न हो। क्योंकि पाश्चात्य विद्वानों ने भी सायण भाष्य का ही अनुकरण किया है। आगे ''गोसेवा अंक'' में लिखा है–

''इस सूक्त में गौ का तथा बैल का विश्वरूप बताया गया है। संस्कृत के प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् ग्रिफिथ महोदय कहते हैं कि इस सूक्त में आदर्श बैल और गाय की प्रशंसा की गयी है।''

जिस प्रकार की गौ की ईश्वर के विराट् रूप में कपोल कल्पना की गई है, वह बृहत्पराशर स्मृति 5/34–4; पद्म पुराण सृष्टि खण्ड 75/156–165; भविष्य पुराण उत्तर पर्व 69/25–37; महाभारत आश्वमेधिक पर्व, वैष्णव–धर्म पर्व अध्याय 92 ''गो सेवा अंक'' पर आधारित है जो अवैदिक है।

महर्षि दयानन्द ने प्रो. मैक्समूलर, ग्रिफिथ सदृश पाश्चात्य विद्वानों की अपने ग्रन्थों में यथास्थान समालोचना की है क्योंकि उनके वेदभाष्यों पर सायण का प्रभाव है। लेखिका ने जो वेदमन्त्र प्रस्तुत किए हैं, उनका अर्थ पण्डित क्षेमकरण दास त्रिवेदी कृत भाष्य से अवश्य पढ़ना चाहिए। वहां कहीं भी भगवान के विराट् रूप के दर्शन नहीं होते। एक और बात, वैदिक पत्रिकाओं में लेख लिखने से पूर्व यह अवश्य सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि लेख वैदिक मान्यताओं पर आधारित है या नहीं? इधर–उधर से एकत्र कर लिखना ठीक नहीं।

लिखते समय वैदिक–अवैदिक मान्यताओं के अन्तर का अवश्य ध्यान रखें। तभी 'आर्य मर्यादा' की सार्थकता है।

4–E, कैलाश नगर, फाजिलका–152123
(पंजाब) मो. : 09463428299

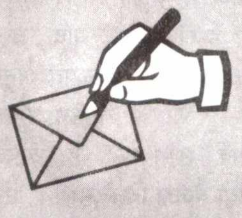

पत्र/कविता

अधूरे कार्यों को पूरा करना ही सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध संन्यासी स्वामी सुमेधानन्द जो का निधन संत शिरोमणि स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के शिष्य स्वामी सुमेधानन्द जी अपने गुरु की आज्ञानुसार दयानन्द मठ चम्बा (हि.प्र.) में गये और वहां पर बड़ा कार्य किया। दयानन्द मठ चम्बा की स्थापना स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने की थी और इसके संचालन का दायित्व स्वामी सुव्रतानन्द जी को सौंपा परन्तु रोगी होने के कारण स्वामी सुव्रतानन्द जो थोड़े समय के उपरान्त ही वहां से वापस लौट आये। उसके उपरान्त स्वामी स्वात्मानन्द जी को भेजा गया। उन्होंने कुछ साल वहां पर रहकर संस्कृत पाठशाला का कार्य किया और आर्य समाजों को भी संगठित करने का प्रयास किया परन्तु ये भी वहां पर अधिक देर तक न ठहर सके। इसके उपरान्त स्वामी जी ने स्वामी सुमेधानन्द जो को (जो पहले ब्रह्मचारी गोपाल के नाम से दयानन्द मठ दीनानगर में रहते थे) चम्बा मठ में भेजा। ये लगभग 1975–76 ई. में चम्बा मठ में आये और कर्मशील एवं योग्य हाने के कारण शीघ्र ही मठ के कार्य का बहुत विस्तार किया। संस्कृत पाठशाला को सुचारु रूप से चलाया, आर्युवैदिक फार्मेसी का कार्य फूला फला और इसके साथ–साथ प्रचार का कार्य, समाजोपकार के कार्य, आर्य समाजों को संगठित करने का कार्य, सभा का कार्य मनोयोग से लेकर बहुत किया। शीघ्र ही इनके तप व त्याग की ख्याति चहुं ओर फैल गई और लोगों ने भी इन्हें भरपूर सहयोग दिया।

चम्बा मठ के माध्यम से आर्य समाज वैदिक विचार धारा का जो कार्य हुआ वह अपने आप में एक उपलब्धि है। स्वामी सुमेधानन्द जी से मेरा सम्पर्क बहुत समय तक रहा। उनमें सेवा भाव बहुत अधिक था, समय पालन में वे बहुत पक्के थे, यज्ञ के बहुत प्रेमी थे सरलता एवं सह्रदयता की प्रतिमूर्ति थे। आर्य प्रतिनिधि सभा के वर्षों तक प्रधान रहे और उनके साथ कार्य करके बड़ा आनन्द आता था। उनकी हार्दिक इच्छा होती थी कि आर्य समाजी संगठित होकर कार्य करें। चम्बा मठ के उत्सव पर कई बार जाने का अवसर मिला उस समय चम्बा की जनता के दिल में स्वामी जी के प्रति जो श्रद्धा एवं आदरभाव था, वह उनके कठिन त्याग व सेवा का ही प्रतिफल था। चरित्र के धनी इस संन्यासी के हमारे मध्य में से चले जाने पर एक रिक्तता आई है जिसकी पूर्ति भविष्य में होना संभव नहीं है। आर्यों से निवेदन है कि वे उनके अधूरे कार्यों को उनकी इच्छा के अनुसार पूर्ण करने का व्रत लें। यही उनको सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

रामफल सिंह आर्य
महामन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा,
हिमाचल प्रदेश

****

श्री कृष्ण! कहां तुम चले गए

व्याकुल है जनता सारी श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
हे चक्रसुदर्शन धारी! श्री कृष्ण! कहां तुम चले गए।।

वैदिक मार्यादा का पालन, करना सब ने छोड़ दिया।
पश्चिमी सभ्यता–संस्कृति से,पक्का नाता जोड़ लिया।।
अन्याय गगा बढ़ भारी श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
हे चक्रसुदर्शन धारी, श्री कृष्ण! कहां तुम चले गए।।

पत्नी थी रुकमणि आपकी जो थी पतिव्रता नारी।
बलशाली प्रद्युम्न पुत्र था, ईश भक्त वेदाचारी।।
हम सब तुम पर बलिहारी श्री कृष्ण कहां तुम चले गए।
हे चक्रसुदर्शन धारी श्री कृष्ण! कहां तुम चले गए।।

दूध, दही घी, मक्खन केशव! तुम खुश होकर खाते थे।
प्रेममयी मन मोहक वंशी, मोहन आप बजाते थे।।
अब नफरत की बीमारी श्री कृष्ण! कहां तुम चले गए
हे चक्रसुदर्शन धारी, श्री कृष्ण! कहां तुम चले गए।।

हे! गोपाल आपने तो, जीवन भर गऊ चराई थीं।
लाखों ललनाएं मिटने से तुमने नाथ बचाई थीं।।
अब गऊएं जातीं हैं मारी, श्री कृष्ण! कहां तुम चले गए।
हे चक्रसुदर्शन धारी श्री कृष्ण! कहाँ तुम चले गए।।

कंस और शिशुपाल दुष्ट को तुमने मार गिराया था।
जरासंध को भीमसेन पर, कुश्ती में मरवाया था।
गुण गाते हैं नर–नारी श्री कृष्ण! कहां तुम चले गए।
हे चक्रसुदर्शन धारी, श्री कृष्ण! कहाँ तुम चले गए।।

चोर–जार, डाकु–गुण्डा, तुमको कुछ घूर्त बताते हैं।
दोष लगाते हैं पाखण्डी, तनिक नहीं शर्माते हैं।
जो खुद हैं भ्रष्टाचारी श्री कृष्ण! कहाँ तुम चले गए।
हे चक्रसुदर्शन धारी श्री कृष्ण! कहां तुम चले गए।।

अमरीका, इंगलैंड, चीन, भारत पर रौब जमाते हैं।
पाकिस्तानी, बंगला देशी, झगड़े रोज़ कराते हैं।
कह ''नन्दलाल'' प्रचारी श्री कृष्ण! कहाँ तुम चले गए।
हे चक्रसुदर्शन धारी श्री कृष्ण! कहां तुम चले गए।।

पं. नन्दलाल 'निर्भय' सिद्धान्ताचार्य
ग्राम पो. बहीन, जनपद पलवल (हरियाणा)
चलभाष क्रमांक : 9813845774

ऐसे लोगों को कैसा पाठ पढ़ायें

महर्षि दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज संसार भर में छाया हुआ है। सभी उसके ऋणी हैं। अन्त समय तक भी उऋण नहीं हो सकेंगे। आर्य समाज की धारा में कुछ ऐसे लोग भी बह चले हैं जिन्हें तैरना नहीं आता। तैरने का ढोंग करते हैं। किनारों से टकराते हुए लहू लूहान हो जाते हैं और दोष आर्यसमाज को देते हैं। देखा–देखी इस समाज में नहीं चल सकते हैं। अपने को उसके योग्य बनाना चाहिए। सिर्फ चाहने से योग्य नहीं बन सकते हैं, त्याग, तपस्या, कर्मठ होना चाहिए। चोरी का कम्बल नहीं, स्वयं बुनकर केवल ओढ़ना चाहिए। गर्व से सिर ऊंचा करके चल सकते हैं।

आर्य समाज रूपी विशाल वट वृक्ष की कुछ डालियाँ कमज़ोर पड़ जाती हैं तो टूटकर गिर जाती हैं। कहते है वृक्ष ने हमें गिरा दिया। हमारे टापू में भी कुछ डाँवाडोल मानसिकता वाले पंडित पंडितायें बन बैठे हैं। सीमित ज्ञान वाले हैं। कुछ अलग से नया स्वाध्याय नहीं करते हैं। मथे हुऐ पानी को ही मथते रहते हैं जिससे समाज की ही हानि होती है। कुछ पंडित पौराणिक कर्मकाण्ड के साथ आर्य समाज के कर्मकाण्ड भी चोरी–छुपे निभाते हैं। दक्षिणा रूपी लालच के कारण हनुमान की ध्वजा भी उड़ाने चले जाते हैं। और पंडिताएँ भी एक–दो मिल जायेंगी जो पीपल के पेड़ का चक्कर लगाती हैं धागे हाथ में लिये। पता नहीं क्या मन्नत की मागते हैं। यहां पर तमिल–तेलूगु लोग तलवार पर चढ़ते हैं, आग पर चलते हैं। साधारण लोगों के अलावा एक पंडिता भी पकड़ी गयी। कहती है बेटे के लिये मन्नत मांगी थी, इसलिए गयी थी। उनके जिम्मे बड़ी सभा की ओर से चार–पांच में हर मास जाना होता है। समाजों में जाकर किस स्वामी का प्रचार करेगी? किस समाज के पथिक लोगों को बनायेगी? भगवान ही जाने। जिसे अपने पर विश्वास नहीं, मानव निर्माण का कारखाना आर्य समाज पर विश्वास नहीं। अपने उद्धारक महर्षि दयानंद सरस्वती पर विश्वास नहीं, वह दूसरों को किस विश्वास का पाठ पढ़ायेगी या पढ़ायेंगे, वैसे लोग समाज के पालक नहीं घातक हैं। वैसे लोगों को क्या पाठ पढ़ायें कैसा पाठ पढ़ायें। सोचनीय मुद्दा है।

सोनालाल नेमधारी

****

योग ऋषियों की महान देन है

● डॉ. बिजेन्द्र पाल सिंह

आज विश्व भर में योग का प्रचार है। देश–विदेशों में राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, छात्र आदि सभी वर्गो का झुकाव व रूचि योग में है। इसीलिए 21 जून विश्व योग दिवस के रूप मे घोषित किया जा चुका है तथा 21 जून को विश्व भर के देशों में योगाभ्यास किया भी गया बड़े–बड़े योग शिविरों का आयोजन किया गया।

विडम्बना यह है कि जिस देश भारत से योग विश्व में गया है वहाँ उसका रूप ही विकृत कर दिया गया है। महर्षि पतंजलि ने योग विषय पर विस्तृत वर्णन किया है। आज हम जब योग का नाम लेते हैं तो सीधे योगासनों पर ध्यान जाता है और योगाभ्यास अर्थात् आसनों को ही योग मान लिया जाता है जबकि योगासन योग नहीं हैं।

पतञ्जलि ऋषि के अनुसार **"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"** चित्त वृत्तियों का निरोध करना योग है। महर्षि के अनुसार अष्टांग योग जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। यम नियमों का पालन किए बिना योगासनों का उचित लाभ नहीं होता जैसा कि यम के अन्तर्गत सत्य, अंहिसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह नियम के अन्तर्गत शौच तप, स्वाध्याय, संतोष और ईश्वर प्रणिधान है।

यम नियम जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनसे हम बुराइयों से बचते व अच्छाइयों को ग्रहण करते हैं। जब तक हम अच्छाइयों को ग्रहण न करें श्रेष्ठ जीवन निर्माण नहीं कर सकते, न श्रेष्ठता का निर्वाह हो सकता है। इसके लिए हमारा आहार भी सात्विक ऋतु दोषकाल वय आदि के अनुसार होना चाहिए। सात्विक भोजन हो, चटपटा तला तैलीय मांस वाला न हो कर हल्का पौष्टिक व सुपाच्य तथा शाकाहार होना चाहिए। जिससे हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहे। भोजन जीने के लिए मात्रायुक्त विधिवत समयानुसार करें। भोजन व जो भी हम प्रयोग करते हैं धन वस्त्र घर आदि सब कुछ ईश्वर का है हमारा नहीं है ऐसा विचार कर प्रयोग करें। त्याग भाव से प्रयोग करें। हमारी दिनचर्या विधिपूर्वक हो। प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठें, ईश्वर स्मरण करें, शौच, स्नान, प्रातः भ्रमण करें। परिधान समय, ऋतु, स्थान आदि के अनुसार हो। हमारा व्यवहार श्रेष्ठ हो, स्वास्थ्य का नित्य प्रति ध्यान रखें, ईश्वर की संध्या उपासना किया करें। तथा व्यायाम आदि करें योगासन विधिवत व्यायाम है जिसमें शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता, शरीर की ऊर्जा, मन की सुन्दरता–निर्मलता, शरीर को हृष्ट, पुष्ट, सुन्दर स्वस्थ बनाए रखने का गुण है। योगासन से हमें रोगों से निवृत्ति व लम्बी आयु मिलती है। असमय बुढ़ापा नहीं आता।

महर्षि पतञ्जलि ने योग के लिए बताया है कि मन को वश में रखना आवश्यक है। हम अपनी चित्त वृत्तियों को नियन्त्रित करें तभी हम चिन्तामय ईर्ष्या, लोभ, मोह आदि से दूर रह आनन्दपूर्वक रह सकते हैं। योगासन करते रहें परन्तु मन बुराइयों, ईर्ष्या, लोभ, कामुकता, मोह आदि से युक्त हो तो योगाभ्यास से भी लाभ नहीं। योगाभ्यास तभी उपयुक्त है जब मन ईश्वर में लगा हो और बुराइयों से दूर हो, तभी योगाभ्यास सार्थक होता है।

हमारा देश ब्रह्मचर्य प्रधान था। योग द्वारा हमारे पूर्वजों ने आनन्द को प्राप्त किया परन्तु आज पिज्जा, फ्राइड फूड, कोल्ड ड्रिंक्स, बार रेस्टोरेन्ट, होटल, फाइव स्टार जैसी पाश्चात्य संस्कृति ने भारत को एक किनारे पर भीड़ में खड़ा कर दिया है। सांस्कृतिक रूप से हम न स्वदेशी रहे, न विदेशी परन्तु इतना अवश्य है कि आज दुनियां भारत से बहुत कुछ ग्रहण कर रही है। हमारी संस्कृति व संस्कारों से लाभ उठा रही है परन्तु मृग मरीचिका की भांति हम पाश्चात्यता के पीछे दौड़ रहे हैं। अपनी भाषा, अपने संस्कारों, अपनी सभ्यता से दूर हो रहे हैं। हमारा क्या? मानवता का धर्म वेद है उससे अलग हो पिछड़ रहे हैं। भौतिकवाद के मोह में अपनी वास्तविक प्राचीन धरोहर को पहचान नहीं पा रहे हैं। पश्चिमी लोग योग को आज योगा बना रहे हैं। योग के रूप में ही इसकी पहचान रहनी चाहिए। योग से ही विश्व को श्रेष्ठता मिल सकती है।

गली नं0 2, चन्द लोक कालोनी,
खुर्जा– 203131
मो. 08979794715

☞ पृष्ठ 04का शेष

कर्म करते हुए ...

फल में आसक्ति मत रखो; किन्तु मनुष्य का व्यवहार तो इसके विपरीत दिखायी देता है। वह बछिया पालता है तो इस फल का चिन्तन करता है कि एक दिन यह गाय बनेगी और दूध देगी। पौधा लगाता है तो इस फल का चिन्तन करता है कि एक दिन यह वृक्ष बनेगा और फल एवं छाया देगा। व्यापार में धन लगाता है तो इस फल का चिन्तन करता है कि इससे एक दिन लाभ मिलेगा। अतः यह कहना कि फल की इच्छा मत करो, मनुष्य के स्वभाव के विपरीत प्रतीत होता है। किन्तु वेद का उपदेश तो गलत हो ही नहीं सकता। इसमें अवश्य कुछ रहस्य है। उसे समझना होगा।

गीता (अध्याय–2, श्लोक–47) में कहा गया है– ''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'' अर्थात् मनुष्य का अधिकार कर्म में ही है, फल पर नहीं। वस्तुतः फल कर्म की छाया मात्र है। जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। यदि मुख सुन्दर है तो प्रतिबिम्ब भी सुन्दर होगा। प्रतिबिम्ब की सुन्दरता चिन्तनीय नहीं है, मुख की सुन्दरता पर्याप्त है। इसी प्रकार फल पर ध्यान केन्द्रित रखने वाला मनुष्य अनावश्यक स्वप्न देखने लगता है। उसके मन में आशंका एवं घबराहट भी आ जाती है। वह कर्म में पूर्ण शक्ति नहीं लगा पाता क्योंकि कुछ शक्ति फल के अनावश्यक चिन्तन में लग जाती है। इससे कर्म बिगड़ सकता है।

लक्ष्य और फल में अन्तर होता है। मनुष्य अपना लक्ष्य अवश्य निर्धारित करे। इसके अनुरूप कर्म की योजना एवं क्रम बनाए। तत्पश्चात् कर्म में पूर्ण शक्ति लगा दे। कर्म को विचारपूर्वक, सावधानीपूर्वक एवं एकाग्रतापूर्वक करना चाहिए। फल मनुष्य के हाथ में नहीं होता । अनेक बार कठोर परिश्रम करने पर भी साधारण फल मिलता है। कभी साधारण परिश्रम भी आशातीत फल दे जाता है। इसमें प्रारब्ध एवं संस्कार भी कारण होते हैं और मनुष्य यह पूरी तरह नहीं समझ सकता कि किस कर्म का क्या फल कब एवं किस प्रकार मिलेगा। अतः मनुष्य कर्म को निखारे, मुख के बिम्बवत् फल स्वयंमेव निखर जाएगा। उसका ध्यान कर्म पर केन्द्रित रहना चाहिए, फल पर नहीं।

मनुष्य को विभिन्न मनुष्यों, विभिन्न कर्मों एवं विभिन्न व्यवहारों के बीच रहना होता है। राष्ट्र में लगभग पाँच प्रतिशत लोग ऐसे होते हैं जो खोटे काम करते हैं। प्रत्येक नगर में हजारों व्यक्ति दुर्जन होते हैं। परिवार में भी एक या दो व्यक्ति ऐसे होते हैं कि मनुष्य उनसे पिण्ड छुड़ाना चाहता है। अच्छे और बुरे के इस संघर्ष में मनुष्य उद्विग्न बना रहता है। वह न तो पञ्च महायज्ञ कर पाता है, न कर्मों में दक्षता ला पाता है और न ही फल–चिन्तन से छूट पाता है।

गुलाब का फूल उत्तम होता है, किन्तु उसके पौधे पर काँटे भी उगते हैं। यदि फूल यह चाहें कि हम ही हम हों, काँटे न रहें, तो यह असम्भव है। यदि काँटे नहीं होंगे तो पौधा भी नहीं होगा। यदि पौधा नहीं होगा तो फूल भी नहीं होंगे। फूल काँटों की अनिच्छा नहीं करते और उनके बीच प्रसन्नतापूर्वक रहते है। यही शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व है। मनुष्य भी इसी प्रकार रहे तो पति–पत्नी, भाई–भाई, पिता–पुत्र और पड़ोसी–पड़ोसी के विवाद न हों। मनुष्य इन क्षुद्र एवं परिहार्य विवादों में फँसकर जीवन के आनन्द को खो देता है। अतः वह ऐसा न करे प्रत्युत प्रतिकूलता में धैर्य रखे और अनुकूलता में आनन्द चखे।

वेद के पथिक को अभीष्ट है कि वह आयु भर उत्तम कर्म करता रहे, फल की चिन्ता न करे और कर्म में लिप्त भी न हो। इस प्रकार वह सक्रिय भी रहे और निर्लेप भी रहे। इसके लिए प्रथम आवश्यकता है कि वह वेदोक्त कर्म ही करे, वेद–विरुद्ध कर्म न करे, अर्थात् सत्य बोले, वेद पढ़े, यज्ञ करे, ईशोपासना करे, मांस न खाए, मूर्ति–पूजन न करे, दुराचरण न करे, इत्यादि। द्वितीय आवश्यकता है कि अपनी उत्तमता पर अभिमान न करे। अभिमान करने से यज्ञ, दान एवं तप जैसे श्रेष्ठ कर्म भी श्रेष्ठ नहीं रहते। तृतीय आवश्यकता है कि वह निर्लेप रहे। जैसे रेलयात्री स्टेशन आ जाने पर अपनी सीट छोड़ देता है और खरबूजा पककर डाल को छोड़ देता है, उसी प्रकार मनुष्य कर्म करके उसे ईश्वर को अर्पित कर दे। उसमें अपनी लिप्सा न रखे। चतुर्थ आवश्यकता है कि निर्लेपता के कारण अन्य कर्मों से विरत न हो। एक कर्म को पूर्ण करके उससे निश्चिन्त हो जाए और तुरन्त दूसरे शुभ कर्म में लग जाए। इसके अतिरिक्त उत्तम जीवन का कोई अन्य मार्ग नहीं है।

6105, पतंजलि योगपीठ फेज–2
हरिद्वार–249405 (उत्तराखण्ड)
मो. 9839181690

चुनाव समाचार

आर्य समाज मन्दिर, परशुरामजी जलालाबाद, शाहजहांपुर, उ.प.

प्रधान	श्रीमती आशा देवी आर्या
मन्त्री	श्री प्रमोद कुमार आर्य
कोषाध्यक्ष	श्री विक्रान्त कुमार वैदिक
मन्त्री	श्री प्रमोद कुमार आर्य
कोषाध्यक्ष	श्री विक्रान्त कुमार वैदिक

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 26-27/8/2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

डी.ए.वी. मलेरकोटला ने मनाया शहीद उधम सिंह व बाल गंगाधर तिलक का जन्म दिन

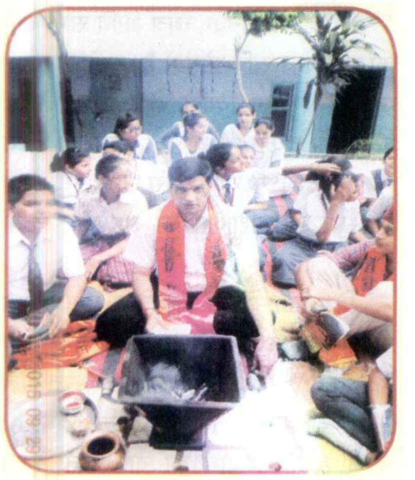

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल मलेरकोटला में शहीद उधम सिंह के पुण्य तिथि व बाल गंगाधर तिलक का जन्म दिन मनाया गया। प्रातः काल सबसे पहले विद्यालय के धर्माचार्य दयानिधि शस्त्री के ब्रह्मत्व में यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें स्कूल के सभी अध्यापकों व विद्यार्थियों ने वैदिक ऋचाओं का उच्चारण करते हुए यज्ञ अग्नि में आहुतियां प्रदान कीं। यज्ञ समाप्ति पर विद्यालय प्राचार्य श्री टी.सी.सोनी जी ने कहा शहीद उधम सिंह व बालगंगाधर तिलक जैसे महान् पुरुषों के जीवनी को पढ़ना चाहिए और उनके जैसे ही अपने जीवन को महान् बनाना चाहिए। तभी हम सब एक आदर्श नागरिक बन सकेंगे।

डी.ए.वी. नगरोटा सूरियां में वैदिक चेतना शिविर का आयोजन किया गया

डी.ए.वी. नगरोटा सुरियां में वैदिक चेतना शिविर का आयोजन किया गया। यह कार्यक्रम आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं आर्य युवा समाज हिमाचल प्रदेश के तत्वावधान में आयोजित किया गया। इसमें 120 छात्र–छात्राओं ने भाग लिया। उद्घाटन पर नगरोटा सूरियां के प्रधान श्री संजय महाजन को आमंत्रित किया गया। प्रभात फेरी में ओ३म् ध्वनी से पूरा गांव गुंज उठा। शिविर का शुभारम्भ हवन–यज्ञ द्वारा किया गया। तत् पश्चात् भजनीपदेशक श्री सुरेश कुमार जी द्वारा मधुर ध्वनि में वैदिक विचार धारा पर भजन प्रस्तुत किये गए जिससे विद्यार्थियों में उत्साह दिखाई दिया। तीन दिन तक हवन, योग–अभ्यास, नृत्य, नाटक व प्रश्नोतरी प्रतियोगिता करवाई गई।

कार्यक्रम के समापन पर मुख्य अतिथि ब्लाक ऑफिसर थे। उन्होंने विद्यार्थियो को आशीर्वाद देते हुए कहा कि वह एक बहुत ही अच्छे विद्यालय में पढ रहे हैं जहाँ पढाई के साथ आप अपनी संस्कृति, अच्छे विचार, अच्छा आचरण सीख रहे हैं।

प्रधानाचार्य श्रीमती मीनाक्षी राव जी ने सभी आगंतुकों का, छात्रों का और डी.ए.वी. से जुड़े हर परिवार का धन्यवाद किया, मुख्य अतिथि द्वारा पारितोषिक वितरित किये गए व शांति पाठ से शिविर का समापन किया गया।

धरती का श्रृंगार वृक्ष हैं, जीवन का आधार वृक्ष हैं

डी.ए.वी. नरवाना में हुआ वन–महोत्सव

नरवाना (हरियाणा) के डी.ए.वी. स्कूल में सप्ताह भर वन महोत्सव पूरे मनाया गया। इस कार्यक्रम में 80 फलदार, औषधीय, छायादार एवं सजावटी वृक्ष लगाए गए इनमें आम, नीम, जामुन, अमरुद, कटहल, बरगद, पीपल, अशोक, रुद्राक्ष, अल्टोनिया, गुलमोहर आदि शामिल हैं। वृक्षारोपण कार्य से पूर्व पूरे सप्ताह विद्यार्थियों को प्रार्थना सभा में वृक्षों के महत्व से सम्बन्धित बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए गीत, कविता व भाषण के माध्यम से मानसिक रूप से तैयार किया जाता रहा। पहले चार दिनों तक बारी–बारी से कक्षा 9, 10, 11 व 12 के विद्यार्थियों ने 2 फुट गहरे बड़े–बड़े गड्ढे खोदे तथा सब गड्ढों के पास पर्याप्त मात्रा में जैविक खाद रखी, अगले चार दिनों तक उन गड्ढों में वृक्षारोपण का पुनीत कार्य सम्पन्न हुआ। पहला वृक्ष प्रधानाचार्य श्री

अरुण गौतम के कर कमलों से रोपा गया, तत्पश्चात् विद्यालय के प्रत्येक अध्यापक–अध्यापिका ने अपने हाथों से एक–एक वृक्ष लगाया। बहुत से छात्रों ने भी हरियाली के प्रति अपना स्नेह व्यक्ति करते हुए एक–एक वृक्ष लगाया। इस वन महोत्सव में मुख्य बात रही कि विद्यार्थी स्वयं आगे आकर एक–एक वृक्ष को गोद लेते रहे तथा पूरे वर्ष उनके पालन–पोषण व सिंचन का उत्तरदायित्व का वचन देते रहे।

वृक्षों के रोपण तथा पालन–सिंचन के अतिरिक्त विद्यालय में वृक्षदान का भी कार्यक्रम चला। विद्यालय के अध्यापक अध्यापिकाओं ने अपनी ओर पौधे भेंट कर इस वन महोत्सव को नया आयाम दिया। स्थानीय समाचार पत्रों ने डी.ए.वी. स्कूल नरवाना के इस अभियान को अपने पृष्ठों पर प्रंशसात्मक स्थान दिया है। विद्यार्थियों में वृक्षों के प्रति स्नेह जगाते हुए संगीत अध्यापक श्री असीम राना ने अपने गीत में कहा–अपने कण–कण से हमको देते सम्पदा अपार वृक्ष हैं। धरती का शृंगार वृक्ष हैं– जीवन का आधार वृक्ष हैं।

आर्य कन्या विद्यालय समिति, अलवर में योग सप्ताह का हुआ आयोजन

अपनी भावी पीढ़ी के जीवन में योग के महत्व को देखते हुए आर्य कन्या विद्यालय समिति अलवर की ओर से योग सप्ताह मनाया गया। योग सप्ताह का समापन श्री जगदीश प्रसाद गुप्ता प्रधान आर्य कन्या विद्यालय समिति की अध्यक्षता में हुआ। कार्यक्रम गायत्री मंत्र के साथ प्रारंभ हुआ।

योग सप्ताह में मोरारजी देसाई राष्ट्रीय इंस्टीट्यूट ऑफ योग, नई दिल्ली से प्रशिक्षित सुश्री दीपाली रेसवाल द्वारा आर्य कन्या विद्यालय समिति, अलवर द्वारा संचालित आर्य संस्थाओं में अध्ययनरत लगभग 4000 छात्राओं एवं शिक्षकों को आठ दिनों तक ग्रीवाशक्ति विकास क्रिया, कटिशक्ति विकास क्रिया, घुटना संचालक क्रिया, ताड़ासन, वक्षासन, पादहस्तासन, त्रिकोणासन, अर्द्धचक्रासन, दण्डासन, वज्रासन, अर्द्धउष्ट्रासन, शशाकासन, कपालभाती, अनुलोम–विलोम/नाडिशोधन प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम, ओ३म ध्वनि आदि का प्रशिक्षण दिया।

समिति प्रधान, जगदीश प्रसाद गुप्ता ने योग के महत्व पर प्रकाश डालते हुए छात्राओं को जीने का तरीका बताया है, जिसे अपनाने से शारीरिक एवं मानसिक विकास के साथ आत्मा का भी विकास होता है।

समिति मंत्री, श्री प्रदीप आर्य ने सभी का धन्यवाद ज्ञापित करते हुए छात्राओं को योग को दैनिक जीवन में अपनाने के लिए प्रेरित किया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.**, डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**